ॐ

॥ वन्दे शिवं शंकरम् ॥

सानन्दमानन्द वने वसन्तमानन्दकदं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्री विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

सारार्तिक्य-पुष्पाञ्जलि-शिवपंचाक्षर-नामावलि-वेदसार-ताण्डव-सरस्वतीस्तोत्रम्

श्री पुष्पदन्त प्रणीत

श्री शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

आचार्य महामण्डलेश्वर
जगद्गुरु पीठाधीश्वर
श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज
कृत

अन्वय-प्रतिपदार्थ प्रबोधिनी-सरलार्यभाषा-टीकासमन्वितश्च

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री जगद्गुरु आश्रम
कनखल, (हरिद्वार)

ॐ

॥ वन्दे शिवं शंकरम् ॥

सानन्दमानन्द वने वसन्तमानन्दकदं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्री विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

सारार्तिक्य-पुष्पाञ्जलि-शिवपंचाक्षर-नामावलि-वेदसार-ताण्डव-सरस्वतीस्तोत्रम्

श्री पुष्पदन्त प्रणीत

श्री शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

आचार्य महामण्डलेश्वर
जगद्गुरु पीठाधीश्वर

श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज

कृत

अन्वय-प्रतिपदार्थ प्रबोधिनी-सरलार्यभाषा-टीकासमन्वितञ्च

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री जगद्गुरु आश्रम

कनखल, (हरिद्वार)

: प्रकाशक-मण्डल :

श्री जगद् गुरु आश्रम अध्यात्मिक मण्डल, कनखल (हरिद्वार) ।

सं० १९९८ प्रथमावृत्तिः १०००

सं० २००० द्वितीयावृत्तिः २०००

सं० २०१० तृतीयावृत्तिः ४८००

सं० २०१७ चतुर्थावृत्तिः ५०००

सं० २०२२ पंचमावृत्तिः ४०००

सं० २०५० षष्ठावृत्तिः ५०००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—(श्री महाराज जी के द्वारा संस्थापित प्रमुख स्थान तथा शाखाएं) :—

(क) श्री जगद् गुरु आश्रम कनखल, (हरिद्वार)।

(ख) श्री जगद् गुरु आश्रम, जनता बाज़ार, जयपुर, (राजस्थान)।

(ग) श्री राधा कृष्ण मन्दिर, गीता भवन धार्मिक ट्रस्ट, गीता नगर, उज्जैन, (मध्य प्रदेश)।

(घ) रामानन्द आश्रम, शीशम झाड़ी, ऋषिकेश, (देहरादून)।

(ङ) आत्मानन्द आश्रम, गेट हकीम, अमृतसर।

(च) शिव मन्दिर सन्यास मठ, बजीरा बाद, (दिल्ली)।

भेंटकर्ता—

डॉ० तिलक राज गुप्त ९-सी, न्यू विजय नगर, जालन्धर (पंजाब) (फोन—७९३७८)

द्वितीय संस्करण की आवश्यकता

सनातन धर्मावलम्बी आवालवृद्ध वनिता मात्र के पठन या श्रवण मात्र से 'श्री पुष्पदन्ताचा
विरचित 'श्री शिवमहिम्नस्तोत्रराज चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कराता है इसमें अणु मात्रा भी सं
नहीं। भगवान् भूतभावन-भूतेश की स्तुति का महत्त्व समझकर कई विद्वानों ने तथा सन्तों न
इसका भाषानुवाद करने का प्रयत्न किया है। इसमें पण्डित प्रवर स्वामी मधुसूदन जी सरस्व
का शैव-वैष्णव उभयात्मक टीका प्रसिद्ध है। परन्तु वर्तमान में शांकरी परम्परा के साधु सम
के भीष्म पितामह माने जाने वाले परमपूज्य परिव्राजकाचार्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ-मानव र
मानवभूषण, धर्म सम्राट्, जगद्गुरु पीठाधीश्वर—आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशान
जी महाराज़ विरचित भगवान् शंकर परक सान्वय भाषा-टीका की सरलता, सुगमता
भावपरिपूर्णता शैव-वैष्णव सभी भक्तहृदय में भक्ति गंगा की धारा को गतिशील बनाने
सर्वविधसमर्थ सिद्ध हुई है। फलस्वरूप इसकी असंख्य प्रतियां बंट चुकी हैं एवं मांग बढ़ती
रही है। इस कारण साधु एवं विद्वत् समाज में किसी प्रकार का अभाव न रहे 'इसकी' अनिवा
महसूस होने लगी है।

श्री जगद्गुरु प्रकाशन द्वारा प्रकाशित इस स्तोत्रराज के द्वितीय संस्करण छपवाने का
परमगुरुभक्त, धर्मपरायण, जालन्धर शहर निवासी 'श्रीमान् तिलक राज गुप्त एवं श्री
चंचल गुप्त' ने उठाया है। इनके इस शुभकार्य के लिए पाठक स्वयं आभार व्यक्त करेंगे।
जगद्गुरु प्रकाशन' इनकी सपरिवार दीर्घायु के साथ ऐहिक एवं पारलौकिक सुख की हा
शुभकामना करता है।

प्रकाशक म

ॐ

आशीर्वचन

अखण्कोटिब्रह्माण्डाधीश्वर भगवान् श्यामसुन्दर विश्व के सबसे प्राचीन और निर्दोष वैदिक संस्कृति का उद्घोष करते हुए कहते हैं कि 'ज्ञान के समान पवित्र इस लोक में कोई वस्तु नहीं हैं'। ज्ञान से ही मनुष्य परमपुरुषार्थ जीवन का लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। ज्ञान दान ही सर्वोत्तम दान माना गया है। (प्रवृत्तिलक्षण) गृहस्थ धर्म के दैनन्दिन कर्त्तव्यों को निभाते हुए ज्ञानदान में सतत् संलग्न रहना उत्तम गृहस्थ का लक्षण है। इस विषय में 'प्रो० डॉ० तिलक राज गुप्त एवं श्रीमती चंचल गुप्त का' परिवार एक अनुपम उदाहरण है। आज से कई वर्ष पहले जम्मू में बालिकारूप में चंचल ने मुझसे दीक्षा ली थी। कई वर्षों तक कोई सम्पर्क नहीं रहा। फिर अब २ वर्ष पहले जब वह सपरिवार आई तो डॉ० तिलकराज गुप्त के शुद्ध एवं धार्मिक विचारों का मुझे परिचय मिला। स्वाभाविक ही उन्होंने मेरे द्वारा संकलित "आध्यात्मिक ज्ञान मार्ग" एवं "शिवतत्त्वबोध" को छपवाने का भार लेकर अत्यन्त सुन्दर रूप में इनको छपवाया अब यह "शिवमहिम्नस्तोत्र" की नवीन आवृत्ति इनके ही अनुपम सहयोग से पुनः प्रकाशित हो रही है।

पूर्ववत् इसकी प्रतियां हज़ारों मन्दिरों में सन्त एवं ब्राह्मणों में बाँटकर प्रयोग की जायेंगी। इनके द्वारा किये गये प्रत्येक पाठ का पुण्य श्री गुप्त परिवार को अवश्य मिलेगा। भगवान् भूतभावन-भूतेश-आशुतोष-नीलकण्ठ-महादेव प्रसन्न होकर इनको सभी प्रकार का सुख प्रदान करें। इनकी धार्मिकता प्रतिदिन बढ़ती रहे एवं भगवान् इनको पारमार्थिक कार्यों में सतत संलग्न रखें।

स्वामी प्रकाशानन्द

आर्चाय महामण्डलेश्वर।

॥ ॐ ॥

❀ भूमिका ❀

नमः शिवाय शान्ताय द्वैतग्रन्थि विभेदिने ।
अद्वैतात्मस्वरूपाय निर्गुणाय च शम्भवे ॥

मानव जब अपने समस्त छलबल और बुद्धिबल से पराजित हो जाता है तब केवल एकमात्र दैवबल का ही आश्रय (सहारा) लेता है । महर्षि यति-मुनि-कवि, भक्तों द्वारा निर्मित और अनेक अवसरों पर संसारताप - प्रशान्तनार्थ किये गये यज्ञ-दान तप योग स्तवन नाम-जप संकीर्तन आदि को ही जीवन का आधार मानकर उनके अनुष्ठान में अग्रसर होता है । कलिकाल में कीर्तन नामजप स्तोत्रपाठ आदि विशेष स्थान रखते हैं । इनमें सभी भक्त-हृदय आबाल-वृद्ध नरनारी का समान अधिकार है । पूर्वोक्त साधनों में श्रीपुष्पदन्ताचार्य विरचित "*श्री शिवमहिम्नःस्तोत्र*" का प्रमुख स्थान है । इस स्तोत्रराज के पाठ से असंख्य विपत्तिग्रस्त साधकों की विपत्ति दूर हुई है और होती है । इसका पाठ वेदपाठ के समान माना जाता है । दशनाम संन्यासियों की अद्वैतपरम्परा के दैनिककर्म का तो यह स्तोत्र मुख्यांग है ही, भक्ति और साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं अपितु सभी दृष्टियों से यह स्तोत्र अपूर्व है ।

श्री पुष्पदन्ताचार्य का पूर्ववृत्तः—

भगवान् आशुतोष शंकर का प्रसादवित्तक नाम और भगवत् कथा - श्रवणपटु एक गण था । वह अपनी स्त्री पर बहुत आसक्त था उसकी प्रसन्नता के लिये सब कर्म करता था ।

एक दिन माँ पार्वती ने महादेव जी से सदाग्रह किया कि मुझे ऐसी कथा सुनाइये, जो अत्यन्त गोप्य और किसी ने आजतक न सुनी हो । भगवान् ने ॐ तथास्तु कहकर भगवती पार्वती को एकान्त में

वह कथा सुनादी और देवी बहुत प्रसन्न हुई। कुछ समय बाद पार्वती की सेवा में प्रसादवित्तक की स्त्री "जया" आई तथा सेवा करते हुये पार्वती को वही कथा सुनाकर अपने निवास पर चली गई। जया दासी से कथा सुन गौरी अवाक् सी रह गई, और मन ही मन अपने पति शिव-भगवान् पर रुष्ट होकर उनके पास पहुंची और कहा कि भगवन्! आपने जिस कथा को अश्रुतपूर्व बताकर मुझे सुनाया, उस कथा को तो वित्तक की स्त्री जया भी जानती है। यह सुन महादेव बोले कि देवि! कथाश्रवण का लोभी वित्तकगण छिपकर हम दोनों के सम्वाद को सुन गया होगा, तुम कथा अश्रुतपूर्वत्व में शंका न करो। पुनरपि देवी ने विश्वासपूर्ति के लिये वित्तक को बुलवाया और पूछा। वित्तक ने यथावत बता दिया कि मैंने छिपकर कथा सुनी। माता पार्वती ने रोषवश प्रसादवित्तक को मर्त्य होने का शाप दे दिया। अमोघ शाप को सुनकर शिवगण हर्ष विषाद से व्याकुल हो गया और मां के पावन चरणों में पड़कर क्षमायाचना करने लगा। माँ मानी, तो वित्तक ने मनुष्ययोनि में वैयाकरणी होने का वरदान मांग लिया, माता ने यह मांग भी मान ली। अतएव वित्तक मनुष्य-योनि में धुरन्धर वैयाकरणी पुष्पदन्त वररुचि और कात्यायन नामों से प्रसिद्ध हुआ। न्यायमंजरी में यह कथा ज्यों की त्यों उपलब्ध होती है—

भ्रष्टः शापेन देव्याः शिवपुरवसतेर्यद्यहं मन्दभाग्यो,
भाव्यं वा जन्मना मे यदि मलकलिते मर्त्यलोके सशोके।
स्निग्धाभिर्दुग्धधारामलमधु सुधाविन्दु निष्यन्दिनीभिः,
कामं जायेयं वैयाकरणभणितिभिस्तूर्णमापूर्णकर्णः॥

यदि मैं मन्दभाग्य माता के शापवश शिवसेवा से च्युत होता और यदि मल तथा शोक से भरे मर्त्यलोक में जन्म लेता हूं तो याकरणों की स्निग्ध सुधामयी वाणी से अपने कानों को पावन नाऊँ। यह अभिलाषा जननी ने पूर्ण की, अहोभाग्य! अतएव शिव-

:-पुष्पदन्त शब्द-शास्त्र के वेत्ता हुए। क्योंकि समस्त वाङ्मय के
प्रष्ठान् प्रणेता आदिगुरु उत्पत्ति-स्थिति-संहारकर्ता और शुद्ध-
-मुक्त स्वभाव शान्त शिव हैं।

ष्पदन्त की साधना—

पुष्पदन्ताचार्य व्याकरणादि शास्त्रों के विज्ञ होकर महादेव
साकार लिंग स्थापना कर शास्त्रविधि से पूजने लगे। भगवान्
व ही भुक्ति-मुक्ति प्रदाता हैं। संसारताप को मिटाने वाले हैं।
ल पुष्प पत्रादि से ही प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु एक बात अधिक
हत्व की है कि शिव के समान उन पर चढ़ा हुआ जलादि निर्माल्य
ी वन्दनीय और पूजनीय माना है। निर्माल्य का पादादि से लांघना
शवापराध माना जाता है। पूजक भी यदि इस अपराध का भागी
नता है तो उसकी सब प्रकार की शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।
तएव शिव की अर्धचन्द्राकार परिक्रमा की जाती है कहीं कोई
जारी भूलकर जलस्थान और शिव - निर्माल्य का उल्लंघन या पद-
पर्श न कर बैठे। पुष्पदन्त द्वारा स्थापित शिवलिंग के दर्शन का
ाभ (स्कन्द पु० १७४ प्रभास २ अ० में लिखा है) देखिये—

तेन तप्त्वा तपोघोरं लिंगं च प्रतिष्ठापितम्।
तद्दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसार बन्धनात्॥

साधनान्तराय उसके नाश का उपाय:—

आचार्य पुष्पदन्त ने पूजन तो प्रारम्भ कर दिया किन्तु सामग्री
की पूर्ति चोरी से करने लगे। राजा के उपवन के पुष्पों की जब
चोरी हुई तो राजा ने मालीगण को सजग किया तथापि चोर का
पता न लग पाया। राजा ने अपने गुरु संन्यासी से पूछा। गुरु ने
बताया कि राजन्! आकाशगामिनी और अन्तर्धानशक्ति के पूर्ण-
प्रभाव से चोरी करता है चोर। इस चोरी को पकड़ना है तो एक
काम करो, शिवनिर्माल्य को (शिव पर चढ़ा जल पत्र आदि) अपने

उपवन में बिखरवादो, । राजा ने ऐसा ही किया और पुष्पदन्ता-चार्य चोरी करते समय अज्ञानवश शिवनिर्माल्योल्लंघन के अपराध से सब शक्तियों से रहित हो गये। अतः यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि साधक विहितकर्मानुष्ठान के समय निषिद्धकर्मत्याग का ध्यान विशेष रखे। पुष्पदन्त ने अनजान कर यह अपराध किया था इसलिये शिवभक्ति नष्ट न हुई और उसके प्रभाव से भगवान् आशुतोष शिव की पद्यमयस्तुति भावविभोर होकर करने लगा। इस स्तुति का नाम "*श्री शिवमहिम्नःस्तोत्र*" है। इसे सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उसे अपनी कृपा तथा शक्तियों का भण्डार बना दिया। आचार्य का जीवन सफल बन गया। अज्ञात अथवा ज्ञात अपराधों की समाप्ति केवल भगवान् शिव की भक्ति से ही सम्भव है।

शास्त्रों ने संसार में मनुष्य जन्म के चार फल बतलाये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। आत्मा से परब्रह्म बनाकर मोक्षलाभ के लिये साधन पक्ष में परस्पर वैमत्य रखते हुए भी 'इस सिद्धान्त को किसी न किसी रूप में समस्तशास्त्र स्वीकार करते हैं कि 'ऋते ज्ञानान्न मोक्षः' 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं और ज्ञान से ही निरतिशयपरमानन्दस्वरूप मुक्ति होती है।

यह शास्त्र का प्रसिद्ध उद्‌घोष है कि—"विद्या कामस्तु गिरीशम्" 'ज्ञानमिच्छेन्महेश्वरात्" ज्ञान की सद्यः प्राप्ति स्वयंप्रकाश भगवान् शिव से ही होती है। सच है वे "औढरदानी" जो ठहरे।

अन्तःकरण की शुद्धि से ज्ञान होता है, और योग-कर्म आदि उसके अनेक उपाय हैं। योगादिकों को तो "समय एव करोति-बलाबलम्" के अनुसार समय ने निगल सा लिया है। अतएव मध्यम-मार्ग (भक्ति मार्ग) ही सर्वसुलभ सर्वसुगम और सर्वश्रेष्ठ है। भक्ति-मार्ग के भी नौ भेद हैं, जिनमें "सततं कीर्तयन्तो माम्" को ही कलियुग में मुख्य माना है। संकीर्तन का स्थूलरूप नामजप स्तोत्रादि ही हैं और पंडितवर्ग में '*शिवमहिम्नः स्तोत्र*' को अत्युत्तम स्तोत्र माना जाता है।

स्तोत्र महत्त्व—

स्तोत्रराज "शिव महिम्नः स्तोत्र" में ४४ श्लोक हैं जिनमें ३२ स्तुति, ४ फलश्रुति के और शेष प्रक्षिप्त हैं। यह स्तोत्र कविता, छन्द, रस, अलंकार, अर्थ-भाव, भाषा-शैली और गायन आदि की दृष्टि से अत्युत्तम और अद्भुत है। इसके दिव्य मनोहर मंगलदायी शिखरिणी छन्दों को पढ़ते २ सिद्ध, भक्त, पंडित, मूर्ख सभी रोमाञ्चित और गद्गद कण्ठ हो जाते हैं। आनन्द विभोर होकर अद्वैत अनुभूति करते हैं। इसका प्रत्येक श्लोक अर्थगुरुता से परिपूर्ण है। वेदान्त-भावों का सागर है यह! इस स्तोत्र की गरिमा महिमा अन्य वथा होगी, कि इस पर सर्वशास्त्रनिष्णात् अद्वैतविद्या के प्रखर-पंडित श्री स्वामी मधुसूदन-सरस्वती जी ने शिव-विष्णुपरक संस्कृत-टीका लिखी है। अन्य पंडितों और महात्माओं ने भी संस्कृत और भाषा टीकाएँ लिखकर अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया है। प्रत्येक दृष्टि से ही परखिए, है भी यह अपने ढंग का एक ही। जिस प्रकार देवों में शिव 'महादेव' हैं और उनके सर्वत्र मन्दिर और भक्त उपलब्ध होते हैं, शिव ही वैदिक देवता हैं उसी प्रकार यह "शिव महिम्न:स्तोत्र" महास्तोत्र है, सर्वत्र इसका प्रचार है और वेद-पाठ के समान ही इसका पाठ माना जाता है।

शिवमय दृष्टि :—

उपासक अपने अबोधवश अपने उपास्यदेव का अन्य देवों से भेद मान लेते हैं। इसी कारण से मतवाद फैलता है। श्री मधुसूदन सरस्वती ने अति गम्भीर संस्कृत टीका लिखकर शिव और विष्णु में अभेद दिखाने की सफल चेष्टा की है। वस्तुतः अभेद - ज्ञान ही भारतीय साहित्य का एकमेव लक्ष्य है। भगवान् आद्य शंकराचार्य जी ने इसी शास्त्र के आधार पर पंचदेव-उपासना अद्वैत की दृष्टि से की है अतः उनका नाम षण्मत-स्थापक आचार्य है। यह भाव इस स्तोत्रराज से पुष्ट होता है मेरा अपना सिद्धान्त यह है कि शिवाति-

रिक्त जगत की सत्ता ही नहीं, शिव ही कार्यरूप से अनेक भासते हैं वस्तुतः वह कार्यकारण वर्जित शुद्ध ब्रह्म हैं। भगवान विष्णु और शिव के नामों का अर्थ भी एक ही होता है। इतना होने पर भी हरिहर में भेद मानने वालों की संख्या भारत में कम नहीं है, यह लोग शास्त्रीय-ज्ञान से रहित हैं, अपना विनाश स्वयं करते हैं। देखिए—

हरिहरयोरेका प्रकृतिः प्रत्यभेदाद् विभिन्नवद् भाति।
कलयति कश्चिन् मूढः हरिहर भेदं बिना शास्त्रम् ॥

राष्ट्रभाषाः—

पाण्डित्य-बुद्धिगम्य संस्कृत टीकाएँ हो सकती हैं परन्तु साधारण जनोपयोगिनी जनभाषा ही हुआ करती है। आज भगवान् की दया से जन-भाषा, देश-भाषा हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है। सार्वजनीन-भाषा द्वारा सर्वसाधारण के लाभार्थ ही अन्वय प्रतिपदार्थ और भाव के सहित सरल हिन्दी में "शिव महिम्नः स्तोत्रान्वय प्रतिपदार्थ प्रबोधनी टीका" लिखी है। यद्यपि संस्कृत टीकाएँ अनेक उपलब्ध हैं तो भी साधारण पठित जनसमाज के लिये उन सबका अनुपयोग ही है और हिन्दी टीकाएँ भी अन्य भाषा मूलपाठ कागज आदि की दृष्टि से सर्वथा अग्राह्य तथा इस स्तोत्रराज के अननुरूप ही हैं।

गच्छतां स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः,
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

के अनुसार सज्जन समाधान करलें। दुर्जनों के उपहास से मेरी उन्नति ही होगी।

स्वामी प्रकाशानन्द
आचार्य महामण्डलेश्वर
जगद्गुरु आश्रम, कनखल (हरिद्वार)

क परिचय—

़ी जगद्गुरु आश्रम, कनखल, हरिद्वार

ंस्थापक-संचालक—पूज्यपाद आचार्य महामण्डलेश्वर—

श्री १००८ स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज

हरिद्वार रेलवे स्टेशन से कनखल जाने वाली पक्की ड़क पर श्री चेतनदेव कुटिया के सामने शान्त, पवित्र वाता-रण में यह परम रमणीक सन्त-आश्रम है। जहाँ चारों र लहलहाते फलदार वृक्ष, फूलों की वाटिका शाक-सब्जी हरे-भरे खेत बड़े मन-लुभावने हैं। बिजली, पानी का सुन्दर बन्ध है। सन्त महात्माओं, अतिथि-शिष्य भक्त परिवारों निवास के लिए कुछ साफ हवादार पक्के कमरे भी बने ए हैं।

ाधु-सन्तों के लिए भोजन व निवास—

इस आश्रम में विद्वान् साधु-महात्मा, विद्यार्थी, ब्रह्मचारी ण भी निवास करते हैं, जिनको भोजन, निवास और स्कृत विद्या तथा धर्मशास्त्रों के अध्ययन की भी सुविधा न:शुल्क मिलती है। सन्ध्या, भजन, पूजन-पाठ, आरती होती है। महाराज श्री आचार्य महामण्डलेश्वर जी जिन दिनों आश्रम में निवास करते हैं, सायंकाल दैनिक सत्संग और वेदपुराण दर्शन गीता रामायणादि शास्त्रों की कथा भी होती हैं।

पुस्तक-प्रकाशन माला—

पूज्यपाद महाराज श्री देववाणी संस्कृत के उच्चकोटि के धुरन्धर विद्वान् आचार्य, सरल-हृदय, संस्कृत, संस्कृति के अनन्य श्रद्धालु एवं संरक्षक हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी में आपने कई पुस्तकें प्रकाशित कराई हैं, जिनके नाम कवर पृष्ठ पर प्रकाशित भी हैं। साधक, भक्तों के लिए जीवन में एक अद्भुत चमत्कार ला दिखाने वाली अनमोल रचनाएं धर्मार्थ वितरण की जाती हैं।

महाराजश्री धार्मिक संसार के कर्मठ धर्माचार्य—सनातन धर्मजगत् को महान गौरव प्राप्त है कि महाराजश्री धर्मरक्षा, गौरक्षा, संस्कृत-संस्कृति की सुरक्षा के पुण्य कार्यों में न केवल देश की धार्मिक सामाजिक संस्थाओं के लिए हृदय से पूर्ण सहयोगभाव व शुभाशीर्वाद लिए रहते हैं, बल्कि ऐसे सत्कर्मों में स्वयं कटिबद्ध होकर क्रियात्मक रूप में तन-मन-धन से हर समय धर्मक्षेत्र में उतर आते हैं। आपने बाल्यपन से ही घोर साधनाएं धार्मिक-अनुष्ठान तपस्या की है, साथ ही आपके हृदय में पहले से ही अपने राष्ट्र के लिए भी एक तड़प है। आप परोपकारी, निश्चछल-हृदय, अटलव्रती, 'सादा जीवन उच्च विचारों' की साकार मूर्ति हैं। आप भगवच्चिन्तन के साथ ही राष्ट्र चिन्तन को भी साथ लिए हैं। भारत के सनातनधर्मी जगत् को आपके क्रियात्मक सन्त जीवन पर भारी गर्व है।

—सम्पादक

* ॐगुँ गुरवे नमः *

सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय प्रकाशानन्दमूर्तये ।. आचार्य-मण्डलेशाय श्री-जगद्गुरवे नमः ॥

श्रीमत् परमहंस परिव्राजक-श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ व्याकरण वेदान्ताचार्य

महामण्डलेश्वर जगद्गुरु अनन्त श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज

श्री शिव मन्दिर (संन्यास मठ)
जल केन्द्र वज़ीराबाद, तीमारपुर, दिल्ली-८

श्री चेतनानन्द आश्रम
कनखल (हरिद्वार) सहारनपुर, (हिमालय)
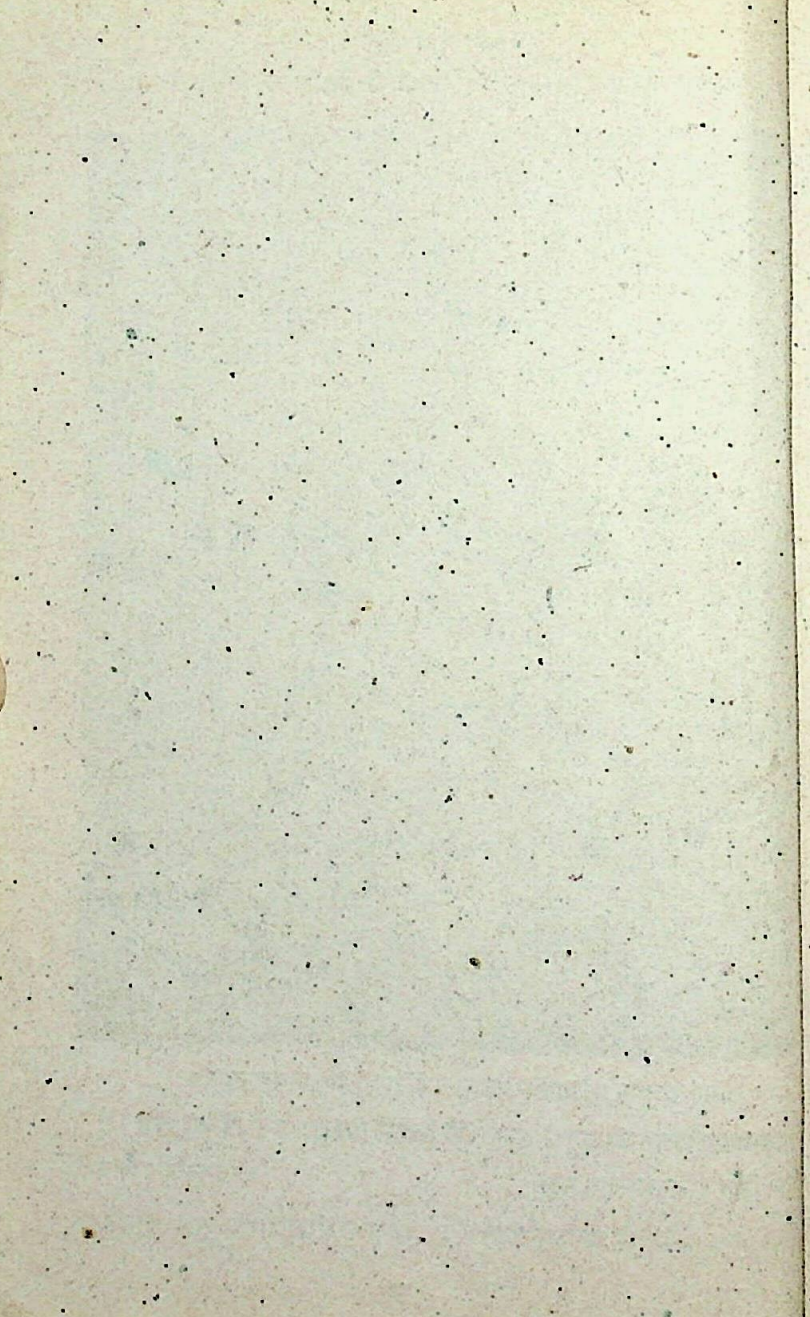
॥ ॐ श्री गणेशाय नमः ॥

शिव-आरातिक्यम्

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

हरिः ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश,
शिव जय गौरीनाथ; त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शंभो, कृपया जगदीश ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने, शिव कल्प०
गुञ्जति मधुकरपुञ्जे गुञ्जति मधुकरपुञ्जे, कुञ्जवने गहने ।
कोकिल कूजति खेलति हंसावलि ललिता शिव हंसा०
रचयति कलाकलापं रचयति कलाकलापं, नृत्यति मुदसहिता ॥१॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

तस्मिंल्ललितसुदेशे शाला मणिरचिता शिव शाला०
तन्मध्ये हरनिकटे तन्मध्ये शिवनिकटे, गौरी मुदसहिता ।
क्रीडां रचयति भूषां रञ्जित निजमीशं शिव रञ्जित०
इन्द्रादिकसुरसेवित ब्रह्मादिकसुरसेवित, प्रणमति ते शीर्षम् ॥२॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

विबुध वधूर्बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता, शिव हृदये०
किन्नर गानं कुरुते किन्नर गानं कुरुते, सप्तस्वरसहिता ।
धिनकत थै थै धिनकत मृदङ्ग वादयते, शिव मृदङ्ग०
क्वण क्वण ललिता वेणुः क्वण क्वण ललिता वेणुर्मधुरं नादयते ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

रुण रुण चरणे रचयति नूपुरमुज्जवलितं, शिव नूपुर०
चक्रावर्ते भ्रमयति चक्रावर्ते भ्रमयति कुरुते तांधिकतां ।
तां तां लुपचुप तालं नादयते शिव तालं०
अंगुष्ठांगुलिनादं अंगुष्ठांगुलिनादं लास्यकतां कुरुते ॥४॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

कर्पूरद्युतिगौरं पञ्चाननसहितं शिव पञ्चा०
त्रिनयनशशिधरमौलि त्रिनयनशशिधरमौलि विषधरकंठयुतं ।
सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालं शिव पावकशशिभालं ।
डमरुत्रिशूलपिनाकं डमरुत्रिशूलपिनाकं करधृतनृकपालम् ॥५॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते, शिव झल्लरि०
नीराजयते ब्रह्मा नीराजयते विष्णुर्वेदऋचां पठते ।
इति मृदुचरण सरोजं हृदिकमले धृत्वा शिव हृदि०
अवलोकयति महेशं शिवलोकयति सुरेशं ईशं ह्यभिनत्वा ॥६॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

कण्ठे रचयति मालां पन्नगमुपवीतं, शिव पन्नग०
वामविभागे गिरिजा वामविभागे गौरी, रूपं अतिललितं ।

सुन्दर सकलशरीरे कृतभस्माभरणं, शिव कृत०
इति वृषभध्वजरूपं हर शिवशङ्कररूपं तापत्रयहरणम् ॥७॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

ध्यानं आरति समये हृदये इतिकृत्वा, शिव हृदये०
रामं त्रिजटानाथं शंभुं गिरिजानाथं ईशं ह्यभिनत्वा ।
संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते, शिव पठनं०
शिवसायुज्यं गच्छति हर सायुज्यं गच्छति भक्त्या यः शृणुते ।८॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ, त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शंभो कृपया जगदीश ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

हरिः ॐ

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनांपतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवन्हिनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवंशंकरम् ॥

पार्वती के प्राणवल्लभ, देवताओं के आदिगुरु संसार के उत्पादक, सर्पभूषणधारी, हाथ में मृग को रखने वाले, जीवरूपी पशुओं के अधीश्वर, सूर्य चन्द्र और अग्नि को तीन नेत्रों में धारण करने वाले, भगवान विष्णु के प्रिय, भक्तजनों के आश्रय

और उनकी सकल कामनाओं के पूर्ण करने वाले मङ्गलरूप भगवान शंकर को अनन्त नमस्कार हैं।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरूकसहितं सांकुशं वामभागे
नानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥

मन को पूर्ण स्थिर किए, पद्मासन में बैठे, चन्द्रमा को मुकुट बनाये हुए, ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात रूपी पांच मुख वाले, तीन आंखों वाले, दाहिने हाथों में शूल, वज्र, तलवार, फरसा और अभय मुद्रा और बांयें हाथों में सर्प, पाश, घण्टा, डमरु और अंकुश धारण करने वाले, अनेक अलंकारों से सुशोभित, स्फटिक मणि के समान वर्ण, पार्वतीपति भगवान शंकर को मैं नमस्कार करता हूं।

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥

कपूर के समान शुभ्र, करुणा के अवतार, संसार के सारतत्त्व सर्पराज को गले का हार बनाने वाले; पार्वती के साथ सदा हृदयकमल में विहारी भगवान शङ्कर को नमस्कार करता हूं।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

(इसका अर्थ महिम्नःस्तोत्र के ३२ श्लोक के नीचे देखिये ।)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

हे परमेश्वर ! आप ही हमारे माता, पिता, सम्बन्धी, मित्र, विद्या, धन हैं—अर्थात आप ही हमारे सब कुछ हैं ।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्री महादेव ! शम्भो ! ॥

हे महादेव ! हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कान, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों से या मन से जानकर या अनजान में किये हुये सभी अपराधों को आप क्षमा करें । हे करुणा के समुद्र शिव ! आपकी जय हो ।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गंगाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।

दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥

हे भक्तगण ! चन्द्र से प्रकाशित सिर वाले, कामदेव के नाशक, सिर में गंगा धारी, सर्पों का हार और कुण्डल पहने अग्निरूपी तीसरी आंख वाले, गजचर्म का सुन्दर परिधान करने वाले, तीनों लोकों के सार रूप, पापों को हरने वाले भगवान शंकर में मोक्ष की प्राप्ति के लिये अपने मन को स्थिर करिये। दूसरे कर्मों से कोई भी लाभ नहीं है।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

शान्त रूप, शेषनाग पर सोने वाले, कमल-नाभि देवताओं के अधिपति, समस्त लोकों के आधार, आकाश के समान व्यापक, घनश्याम, अच्छे अवयवों वाले, लक्ष्मी के पति, कमल के समान नेत्र वाले, योगियों के ध्येय, संसार के दुःख नाशक, सारे लोकों के नाथ भगवान विष्णु को मैं नमस्कार करता हूं।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

हम उस परमात्मा को जानें और उनका ध्यान करें, इस तरह वे ही हमें पाप से हटाकर पुण्यकार्य और आत्मज्ञान में प्रेरित करें।

अथ मन्त्रपुष्पाञ्जलिः

हरि ॐ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्रपूर्वे साध्यास्सन्तिदेवाः ॥

देवसदृश महापुरुषों ने पूजा, दान यज्ञादि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करके उन प्रधान धर्मों के आचरण के द्वारा महान स्वर्ग पद को प्राप्त किया, जहां कि पहले की साधना के फलस्वरूप देवगण जाते हैं ।

ॐ राधाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
समे कामान् कामकामाय मह्यम् कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥

बलपूर्वक अपनी आज्ञा मनवाने वाले राजाधिराज कुबेर को हम नमस्कार करते हैं । वे कामनाओं को पूर्ण करने वाले कुबेर मेरी कामनाओं को पूर्ण करें । विश्रवा के पुत्र महाराज कुबेर को नमस्कार है ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमीजंनयन् देव एकः ॥

सारे ही प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों वाले परमेश्वर पशु-मनुष्यादि को हाथों पैरों से एवं पक्षी-पतंगादि को पंखों से युक्त करता है। उनके रहने का स्थान पृथ्वी आकाशादि भी वही एक परमात्मा बनाता है।

नाना सुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर!॥

मेरे द्वारा समयानुकूल उत्पन्न अनेक प्रकार की सुगन्धि वाले पुष्पों को और पुष्पाञ्जलि को हे महादेव! आप ग्रहण करिये।

॥ अथ आचार्यपुष्पाञ्जलिः ॥

卐 हरिः ॐ 卐

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवै रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य
शाक्याद्युद्दामकण्ठीरवनखकराघातसञ्जातमूर्च्छाम् ।
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत्सूक्तिपीयूषवर्षैः
सोऽयं श्रीशङ्करार्यो भवदवदहनात्पातु लोकाननस्रम् ॥१॥

(सान्वय भाष्य)

यः = जो (दक्षिणामूर्ति भगवान सदाशिव)	अवतीर्य = आकर (पृथ्वी पर अवतार लेकर)
विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवैः = भगवान विष्णु, प्रजापति ब्रह्मा, देवराज इन्द्र आदि द्वारा	सूक्ति-पीयूष-वर्षैः = भाष्य प्रकरणादिरूपी अमृत की वर्षा से
प्रार्थितः = अनुनय पूर्वक आवेदन करने पर	शाक्याद्युद्दाम कण्ठीरवनख-कराघात-सञ्जात-मूर्च्छाम् = बौद्ध, जैन, चार्वाक, कापालिक पाञ्चरात्र आदि नास्तिक रूपी सिंहों के नाखून और पञ्जों से बेहोश हुई
रजतगिरि-तटात् = कैलास पर्वत से	

छन्दोधेनुम्	= वेदरूपी गाय को		श्रीशङ्करार्यः	= श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्य
प्रकृतिम्	= पुनः पूर्व स्वाभाविक प्रतिष्ठा को (पुनरुज्जीवित किया)		लोकान्	= समस्त लोकों को
अगमयत्	= ले गये,		भव-दव-दहनात्	= जन्म-मरणादि रूपी आग के जलने से
अयम्	= वे			
सः	= प्रसिद्ध (स्वनामधन्य)			
यतीन्द्रः	= परमहंस सन्यासियों के मूर्धन्य		अजस्रम्	= हमेशा
			पातु	= बचावें

जब सनातनधर्म बौद्ध, जैन, चार्वाकादि नास्तिकों के आघात से लुप्तप्राय हो गया और देवताओं की पूजा यज्ञादि बन्द हो गये, तो उन्होंने अपनी रक्षा के लिये भगवान शंकर से कातर होकर प्रार्थना की। दयामय प्रभु ने आचार्य कुमारिलभट्ट के रूप में अपने पुत्र कार्तिकेय स्वामी को भेजकर वेदों के पूर्वकाण्ड का उद्धार करवाया और फिर स्वयं अवतार लेकर उत्तरकाण्ड का उद्धार किया।

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानाम्
प्रौढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली ।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः
पायाच्छ्रीपद्मपादादिममुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः ।२।

(सान्वयार्थः)

पद	अर्थ
भव-मरु-तपनोद्दामतापा-कुलानाम्	जनन मरण रूपी मरुभूमि में आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविकादि तीनों ज्वरों की भीषण गर्मी से घबराये हुये लोगों के लिये
पूर्णः	पूर्ण
पीयूषभानुः	चन्द्रमा (सभी ज्वरों की शान्ति रूपी अमृत-वर्षक)
प्रौढाज्ञानान्ध-कारावृत-विषमपथ-भ्राम्यताम्	बहुत गाढ़ अज्ञान रूपी अन्धकार से ढके हुये भयानक रास्तों में भटकते हुओं के लिये
अन्शुमाली	सूर्य (अज्ञान-नाशक ज्ञान-स्वरूप),
विगत-धनसु-तादीषणानाम्	धन-घर-स्त्री आदि समस्त लौकिक इच्छाओं को छोड़ने वाले
यतीनाम्	परमहंस परिव्राजकों के लिये
कल्पः शाखी	कल्पवृक्ष (की तरह उनकी सारी भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले)
श्रीपद्मपादा-दिसमुनिस-हितः	श्रीपद्मपादाचार्य आदि अपने सभी शिष्यों के साथ
श्रीमत्	ब्रह्मविद्या रूपी धन वाले
आचार्यवर्यः	आचार्यों में श्रेष्ठ (श्री भाष्यकार)
नः	हमारी
सदा	हमेशा
पायात्	रक्षा करें

सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के साथ कभी नहीं रहते परन्तु भगवान भाष्यकार में दोनों एक साथ ही हैं, क्योंकि ब्रह्मानन्द स्वरूप अमृत और ज्ञानरूपी प्रचण्ड भास्कर दोनों ही एक साथ हैं। उसी प्रकार इच्छा रहितों की इच्छापूर्ण करने वाले हैं। (विरोधाभास का उदाहरण देखिये—)

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥३॥

ब्रह्मानन्दम् = { अनन्त आनन्द-स्वरूप

परमसुखदम् = { मोक्षरूपी निरतिशय सुख को देने वाले

केवलम् = { अज्ञान और उसके कार्य से अछूत

ज्ञानमूर्तिम् = { ज्ञानरूपी शरीर वाले

न्द्वातीतम् = { राग द्वेष काम क्रोध इत्यादि द्वन्द्वों से रहित

गगनसदृशम् = { आकाश के समान सर्वत्र व्यापक

तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् = | जीव और ईश्वर की एकता प्रतिपादित करने वाले वैदिक वाक्यों के अर्थ रूप

एकम् = { किसी भी अवयव से रहित

नित्यम् = | भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में एकसा रहने वाले

विमलम् = { दोषरहित

अचलम् = { सारी क्रियाओं से रहित

सर्वधीसाक्षिभूतम् = समस्त बुद्धियों के साक्षी रूप

भावातीतम् = जन्म रहित

त्रिगुणरहितम् = सत्व रज और तमोगुण से रहित

तम् = उन

सद्गुरुम् = सद्गुरु को

नमामि = मैं प्रणाम करता हूँ।

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च
व्यासं शुकं गौड़पदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्यशिष्यम्।
श्री शंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यं
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद् गुरुन्सन्ततमानतोऽस्मि ।४।

नारायणम् = भगवान नारायण

पद्मभवम् = भगवान ब्रह्मा (ये दोनों, देवताओं में अद्वैतवाद के प्रवर्तक हैं।)

वसिष्ठम् = वसिष्ठ महर्षि (ये ऋषियों में श्रेष्ठ अद्वैतवादी हैं। योगवासिष्ठ महारामायण में आदिकवि वाल्मीकि ने आपके राम के प्रति किये हुये उपदेशों को संग्रह किया है)

शक्तिम् = ब्रह्मर्षि शक्ति (सत्ययुग के वेदान्ताचार्य)

च = और

तत्पुत्रपराशरम् = उनके पुत्र ब्रह्मर्षि पराशर (त्रेतायुग के वेदान्ताचार्य)

च = और

व्यासम् = भगवान कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास (द्वापर, युगके वेदान्ताचार्य, ब्रह्मसूत्र के प्रणेता एवं पुराणों और महाभारत द्वारा वेदान्त-रहस्यको सुगम करने वाले

शब्द		अर्थ
शुकम्	=	परमहंस श्री शुकदेव जी (अद्वैत के मूर्त-रूप)
महान्तम् गौड़पदम्	=	भगवान गौड़-पादाचार्य (कलियुग में वेदान्त के प्रथम आचार्य, माण्डू-क्योपनिषद् पर कारिकाओं के कर्ता)
गोविन्दयो-गीन्द्रम्	=	सन्यासी मंडल के अधीश्वर गोविन्दपादा-चार्य जी
अथ	=	और इनके बाद
अस्य	=	इनके
शिष्यम्	=	शिष्य
श्री शङ्करा-चार्यम्	=	भगवान सदा-शिव के अव-तार श्री शङ्कर-भगवत्पादाचार्य
अथ	=	और
अस्य	=	इनके
शिष्यम्	=	प्रधान) शिष्यगण

शब्द		अर्थ
पद्मपादम्		पद्मपादाचार्य (आपका नाम 'आ[illegible] [illegible]नंदन' [illegible] ब्रह्म-[illegible] पर [illegible]का' [illegible] टीकों के [illegible]ने वाले होने से आपको पञ्चपादिका-चार्य भी कहते हैं। आप भग-वान विष्णु के अवतार हैं।)
हस्तामलकम्	=	हस्तामलकाचार्य (आपका नाम 'आचार्य पृथ्वी धर तीर्थ' है। आपका 'हस्ता-मलकस्तोत्र' वेदान्तकी अति-प्रौढ़ रचना है।)
तोटकम्	=	तोटकाचार्य (आपका नाम 'आचार्य आनन्दगिरि है।' गुरु सेवा से ही आपको समस्त विद्या की प्राप्ति हुई थी। तोटकछन्द में ही 'श्रुतिसा-रसमुद्धरणम्'

आ[illegible]ओं को बनाने [illegible] कारण आपको तोटक कहते हैं आप देवगुरु बृहस्पति के अवतार हैं।)

च = { और

तम् = { उन स्वनामधन्य

वार्तिककारम् = सुरेश्वराचार्य (आपका नाम 'आचार्य विश्वरूप भारती है, भगवान ब्रह्मा के अवतार होने से आप सुरेश्वर नाम से ही प्रसिद्ध हैं। 'बृहदारण्यकभाष्य और तैत्तिरीयभाष्य पर 'वार्तिक' लिखने के कारण आपको वार्तिककार भी कहते हैं।)

च = { और

अन्यान् = { अन्य सभी वेदान्त सम्प्रदायाचार्य

अस्मद्गुरून् = हमारे गुरु लोगों को

सन्ततम् = { नित्य निरन्तर

आनतः = { मनसे वाणीसे और शरीर से नमस्कार करता

अस्मि = { हूं।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं

पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।

यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं

तस्मै श्री गुरूमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ।५।

यः	= जो परमात्मा
निद्रया इव	= निद्रा दोष की तरह
मायया	= माया की अघटित घटना-शक्ति के द्वारा
आत्मनि	= आत्मा में
निजान्तर्गतम्	= अपने अन्दर हीं होने वाले
विश्वम्	= संसार को
बहिः	= अपने से बाहर
उद्भूतम्	= उत्पन्न हुए
यथा	= की तरह
दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यम्	= शीशे में दिखने वाले शहर के समान
पश्यन्	= देखता हुआ
प्रबोध समये	= जागने पर (ज्ञान हो जाने पर
अद्वयम्	= अखण्ड और भेद रहित
एव	= ही
स्वात्मानम्	= अपने आपका
साक्षात्कुरुते	= प्रत्यक्षानुभव करता है।
तस्मै	= उन वेदान्त व संन्यासियों के प्रथम आचार्य
श्रीगुरुमूर्तये	= गुरु रूपधारी
श्रीदक्षिणामूर्तये	= श्री दक्षिणामूर्तिभगवानको
इदम्	= यह
नमः	= हमारा किया हुआ नमस्कार स्वीकृत हो।

[सृष्टि के आदि में सनत्कुमारों ने निवृत्तिमार्ग का आश्रय लिया। वे जब भगवान सदाशिव को गुरु बनाने के लिये गये तो भगवान ने दक्षिणामूर्ति रूप लेकर चिन्मुद्रा से उपदेश दिया। अतः वे ही निवृत्ति-मार्ग के प्रवर्तक परमहंस परिव्राजकाचार्य हैं।]

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥६॥

येन	=	जिसने	येन	=	जिन्होंने
अखण्डमण्डलाकारम्	=	सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को	दर्शितम्	=	मुझे प्रत्यक्ष दिखला दिया
चराचरम्	=	और उसके अन्दरके समस्त जड़ चेतन को	तस्मै	=	उन
			श्रीगुरवे	=	श्री गुरुदेव को
व्याप्तम्	=	व्याप्त किया है	नमः	=	(मेरा) सर्व भाव से नमस्कार है।
तत्पदम्	=	उस परमपद (ब्रह्म) को			

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥७॥

गुरुः	=	गुरु	गुरुः	=	गुरु
ब्रह्मा	=	ब्रह्मा (शिष्य को उपदेश द्वारा आत्म-साक्षात्कार उत्पन्न करने वाले) हैं।	विष्णुः	=	विष्णु (उत्पन्न हुए साक्षात्कार की वादी प्रतिवादियों से रक्षा करने वाले) हैं

गुरुः	= { गुरु	साक्षात्	= { प्रत्यक्ष दीखने वाले
देवः	= { स्वयं प्रकाशरूप	परम्	= { निर्विशेष
महेश्वरः	= { महेश्वर (ज्ञान-रूपी प्रकाश से अज्ञान को जड़ से नष्ट करने वाले) हैं	ब्रह्म	= { परमात्मा हैं
		तस्मै	= { ऐसे उन सर्वोत्कृष्ट
		श्रीगुरवे	= { श्री गुरुदेव को
गुरुः	= { गुरु	नमः	= { नमस्कार है

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥८॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानाम्	= वेदस्मृति पुराणादि शास्त्रोंके	लोकशङ्करम्	= { समस्तप्राणिवर्गका कल्याण करने वाले
आलयम्	= { आश्रय,	शङ्करम्	={आचार्यश्रीशंकर
		भगवत्पाद	={भगवत्पाद को
करुणालयम्	= { करुणासागर	नमामि	= मैं नमस्कार करता हूं ।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥९॥

…सूत्रभाष्य-कर्तारौ =	ब्रह्मसूत्र और उसके भाष्य को बनाने वाले	
…वन्तौ =	समस्त ज्ञान धर्म ऐश्वर्य वैराग्यादि वाले	
…शवम् =	भगवान् विष्णु के अवतार	
बादरायणम् =	वेदव्यास को (और)	
शंकरम् =	भगवान् शंकर के अवतार	
शंकराचार्यम् =	आचार्य शंकर भगवत्पाद को	
पुनः पुनः =	बारम्बार	
वन्दे =	मैं नमस्कार करता हूं।	

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।

व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१०॥

ईश्वरः =	जिस तत्व का उपदेश दिया जाता है,
गुरुः =	उपदेश देने वाला,
आत्मा =	उपदेश लेने वाला,
इतिः =	इन (तीनों के)
मूर्तिभेद-विभागिने =	अलगपने को मिटाने वाले,
व्योमवत् =	आकाश के समान
व्याप्तदेहाय =	व्यापकशरीरवाले
दक्षिणामूर्तये =	श्रीदक्षिणा-मूर्ति शरीर-धारी भगवान सदाशिव को
नमः =	नमस्कार है।

* श्री शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम् *

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय,
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥१॥
मन्दाकिनी सलिलचन्दनचर्चिताय,
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय,
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥२॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥३॥
वशिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥४॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

अथ शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

॥ मंगलाचरणम् ॥

गजाननं भूतगणाधिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

कपित्थ-जम्बू-फल-चारु-भक्षणम् =	कैथ और जामुन के सुन्दर फलों को खाने वाले,	नमामि =	मैं नमस्कार करता हूँ।
गजाननम् =	हाथी के मुख वाले,	शोक-विनाश-कारकम् =	संसार रूपी शोक को नष्ट करने वाले
भूतगणाधि-सेवितम् =	भूतगणों से पूजित	विघ्नेश्वर-पाद-पंकजम् =	गणेश जी के चरण-कमलों को
उमासुतम् =	पार्वती के पुत्र (गणेशजी) को	(नमामि) =	(मैं नमस्कार करता हूं।)

* पुष्पदन्त उवाच *

[१]

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

अन्वय—हे हर ! ते महिम्नः परं पारम् अविदुषः स्तुति यदि असदृशी तद् ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि अवसन्ना अथ सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणान् अवाच्यः मम अपि स्तोत्रे एषः परिकरः निरपवादः ॥१॥

हे हर !=त्रिविधसन्तापहारिन् !
ते=मायारहित निर्गुण तुम्हारी
महिम्नः=महिमा की
परम्=अन्तिम
पारम्=सीमा को
अविदुषः=न जानने वाले अपण्डित साधारण मनुष्य के द्वारा की गई।
स्तुतिः=स्तुति
यदि=यदि आपके
असदृशी=अयोग्य है अर्थात् जैसी स्तुति होनी चाहिए वैसी नहीं हुई।
तद्=तब तो
ब्रह्मादीनाम्=ब्रह्मादि की
अपि=भी
गिरः=वाणी (स्तुति)
त्वयि=आपके विषय में
अवसन्नाः=अयुक्त ही है क्योंकि वे भी तो तुम्हारी महिमा से अनभिज्ञ हैं
अथ=और यदि
सर्वः=सब कोई
स्वमतिपरिणामावधिगृणन्=अपनी अपनी बुद्धि के बलानुसार स्तुति करता हुआ
अवाच्यः=निर्दोष ही है अर्थात् स्वमत्यनुसार प्रार्थना करना दूषण नहीं है
मम=फिर तो मेरा
अपि=भी
स्तोत्रे=आपके इस स्तोत्र में
एषः=यह
परिकरः=यत्न अर्थात् स्तोत्र निर्माण का क्रम
निरपवादः=निन्दा रहित है किसी भी प्रकार की निन्दा के योग्य नहीं हो सकता।

[२]

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥

अन्वय–हे भगवन् ! तव च महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः यं श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः अर्वाचीनेपदे तु कस्य मनः न पतति कस्य वचः न पतति (अपि तु पतत्येव) ॥२॥

हे भगवन् !–बल, वैभव, यश श्री ज्ञान, वैराग्य-युक्त भगवन्

तव=तुम्हारी.

च=तो

महिमा—महानता

वाङ्मनसयोः – मन और वाणी के

पन्थानम्=मार्ग 'विषय' से

अतीतः=पृथक है परे है

यम्=जिस, सच्चिदानन्दघन आप और आप की महिमा को

श्रुतिः—वेद

अपि—भी

अतद्व्यावृत्त्या – तटस्थ और स्वरूप लक्षण से साकार और निराकार रूप वर्णन करने में —'अध्यारोपापवादन्याय से' कुछ अयुक्त न हो जाय, अतएव

चकितम्–अतिविस्मित होकर

अभिधत्ते–कथन करता है।

आप में भेद-बाधक और अभेद-साधक श्रुतिसमन्वयको वेद भी चकित होकर कहता है और इस समन्वय के द्वारा आपको कोई ही समझता है, नहीं तो भेद ही सबकी बुद्धि का विषय है तथा भेद में दुःख है और

सः=वह परमात्मा

कतिविधगुणः = { कितने प्रकार के गुणों वाला है इस प्रकार

कस्य=किसके

स्तोतव्यः=स्तुति करने योग्य और

कस्य=किसके ज्ञान का

विषयः=विषय है अर्थात् गुणातीत रूप है किसी की बुद्धि का विषय नहीं हो सकता फिर भी

अर्वाचीने=नव रचित

पदे=स्तोत्रादि में अथवा भक्तकल्याणकारी साकार आपके रूप में

तु=तो

कस्य=किसके

मनः=चित्त और

वचः=वाणी

न पतति=नहीं रमते हैं ऐसा

न=नहीं, किन्तु मनोहर पदार्थ को मन और वाणी ग्रहण करते ही हैं।

[३]

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः,
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥

अन्वय—हे ब्रह्मन् ! मधुस्फीताः वाचः परमम् अमृतम् निर्मितवतः तव किम् सुरगुरोः अपि वाक् विस्मयपदम् (धत्ते) अहम् तु एताम् वाणीम् हे पुरमथन ! भवतः गुण-कथनपुण्येन पुनामि अस्मिन् अर्थे मम बुद्धि व्यवसिता ।३।

ब्रह्मन् ! = हे त्रिलोकपते !
मधुस्फीताः = माधुर्यपूर्ण मधु से भी सुमधुर
परमम् = अत्यन्त
अमृतम् = अमृतस्वरूप तथा सब दोषों से रहित वेदों को
निर्मितवतः = निर्माण करने वाले
तव = (महामहिमवाली) सर्वज्ञ आपके लिये
किम् = क्या
सुरगुरोः = बृहस्पति की
वाक् = वाणी, (स्तुति)
अपि = भी
विस्मयपदम् = आश्चर्य कर सकती है क्योंकि सर्वोत्तम वेद-वाणी को रचने वाले तो आप हैं फिर मनुष्य या देव द्वारा की गई स्तुति क्या आश्चर्य कर सकती है तथापि
हे पुरमथन = हे त्रिपुरारे !
अहम् = मैं
तु = तो
एताम् = इस अपनी
वाणीम् = वाणी को
भवतः = आपके
गुणकथनपुण्येन = गुणवर्णन के पुण्य से
पुनामि = पवित्र करता हूं
इति = अतएव
अस्मिन् = आपके इस मोक्षप्रद स्तुति रूप
अर्थे = कार्य में
मम = मेरी
बुद्धिः = बुद्धि
व्यवसिता = प्रस्तुत हुई है

---

[४]

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्,
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनु
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमण
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जड़धिय

अन्वय---हे वरद ! इह एके जड़धियः तव जगदुदयर
प्रलयकृत् त्रयीवस्तु गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस
ऐश्वर्यम् विहन्तु अभव्यानाम् रमणीयाम् अस्मिन् 'स
ज्ञत्वादिगुणे' अरमणीम् व्याक्रोशीं विदधते ।४।

हे वरद ! —हे वरदायिन् !
इह—इस संसार में
जड़धियः—जड़ बुद्धि
एके—कई नास्तिक मीमांसकादि व विधर्मी लोग
जगदुदयरक्षा प्रलयकृत् = जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलयकारी तथा
गुणभिन्नासु—सत्व, रज और तमोगुण के भेद से
तिसृषु—तीनों 'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भेद वाले'
तनुषु—शरीरों में

व्यस्तम्—विभक्त हुए और
त्रयी वस्तु — वेद प्रतिपा अर्थात् ऋग् य साम ये तीन वे जिसे प्रतिपाद करते हैं ऐसे
तव—आपके
ऐश्वर्यम्--ऐश्वर्य को
विहन्तुम्---खण्डन करने के लि
अभव्यानाम्---पापियों को
रमणीयाम्---सुन्दर प्रतीत होने वाली और
अस्मिन्---सर्वज्ञत्वादि के प्रतिपादन करने में

अरमणीम्—निन्दित (बुरी) अर्थात् दुष्टों के लिये मनोहर और सर्वज्ञत्वादि आप के स्वरूप प्रतिपादन करने में कुण्ठित ऐसी २
व्याक्रोशीम्—कुकल्पनाओं को

विदधते—किया करते हैं, सच है कि माया ने सबको मोहित कर रखा है आपके भक्त ही इस सर्वमोहिनी माया को पार करते हैं।

[५]

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः,
कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः

अन्वय—स खलु धाता किमाधारः किमीहः किंकायः किमुपायः किमुपादानः सन् त्रिभुवनम् सृजति इति अयम् कुतर्कः अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुःस्थः हतधियः कांश्चित् जगतः मोहाय मुखरयति ।५।

(और हे आशुतोष)
सः—वह
धाता—ब्रह्मा
खलु—निश्चय ही
किमाधारः—कहां बैठकर और
किमीहः—किस इच्छा को लेकर

किंकायः—किस देह और
किमुपायः—कौन उपाय तथ
किमुपादानः—किन कारणों
अर्थात् किन वस्तुअ
से तथा किसके लि

त्रिभुवनम् =इस ब्रह्माण्ड को
सृजति =उत्पन्न करते हैं
इति =ऐसा
अयम् =यह
कुतर्कः =कुतर्क
अतर्क्यै-श्वर्ये =अनिर्वचनीय ऐश्वर्य वाले अर्थात् कुतर्क का अविषय और श्रद्धा का विषय है ऐश्वर्य जिनका, ऐसे
त्वयि =आप में
अनवसर-दुःस्थ =सावकाश न होकर (डामाडोल)
जगतः =संसार को
मोहाय =मोहने के लिये
हतधियः =मूढ बुद्धि
कांश्चित् =किन्हीं चार्वाक आदियों को और बुद्धिवादि आधुनिक मूर्खों को
मुखरयति =वाचालतया भ्रम में डालता है।

—o—

[६]

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरः;
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे॥

अन्वय—हे अमरवर! अवयववन्तः अपि लोकाः किम् अजन्मानः (अपि तु न) भवविधिः जगताम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य किम् भवति (अपि तु न) वा अनीशः कुर्यात्, (तदा) भुवनजनने कः परिकरः, यतः 'कारणात्' इमे मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते।६।

हे अमरवर ! =हे सुरवर !
इमे=ये
लोकाः=भू आदि लोक
अवयववन्तः=अवयव वाले अनेक (स्थूल होने पर)
अपि=भी
किम्=क्या
अजन्मानः=अजन्मा हैं अर्थात् क्या संसार जन्म स्थिति और संहार से रहित है और
किम्=क्या
भवविधिः=जगत की उत्पत्ति आदि का प्रारम्भ
जगताम्=सम्पूर्ण जगत के
अधिष्ठातारम्=किसी कर्ता को
अनादृत्य=न मान करके
भवति=हो सकता है कभी भी कर्ता के बिना संसार नहीं हो सकता और
वा=यदि
अनीशः=बिना ईश्वर के ही कोई संसार को.
कुर्यात्=उत्पन्न करता है तो
भुवनजनने=चतुर्दश भुवनों को उत्पत्ति में ईश्वर के अतिरिक्त
कः=कौन कर्ता और
परिकरः=कौन सी सामग्री है
यतः=जिस कारण से
मन्दाः=अति मूढ बुद्धि वाले
त्वाम्=आपके
प्रति=विषय में
संशेरते=शंकायें करते हैं।

जिसके द्वारा संसार उत्पन्न होता है ईश्वर से पृथक कोई भी कर्ता वा सामग्री नहीं जिससे जगत् उत्पन्न हो सके, क्योंकि परमात्मा के बिना जगत उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः अनेक भेदों से युक्त इस संसार का कर्ता परमात्मा है फिर भी यदि लोग शंका करें, तो उनके मन्द भाग्य ही हैं।

[७]

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

अन्वय—त्रयी सांख्यम् योगः पशुपतिमतम् वैष्णवम् इति प्रस्थाने प्रभिन्ने इदम् परम् अदः पथ्यम् इति च रुचीनाम् वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम् नृणाम् एकः पयसाम् अर्णवः इव त्वम् गम्यः असि ।७।

त्रयी=तीनों वेद (ऋग्, यजु साम)
सांख्यं=सांख्य शास्त्र
योगः=योग शास्त्र
पशुपतिमतम्=शैवमत पशुपतिशास्त्र
वैष्णवम्=वैष्णव मत
इति=इत्यादि
प्रभिन्ने=अनेक मत
प्रस्थाने=मतान्तरों के विद्यमान रहने पर इनमें कोई सरल और कोई कठिन अर्थात् किसी के द्वारा साक्षात् और किसी से परस्परया ब्रह्मप्राप्ति होती है। फिर भी
इदम्=यह
परम्=श्रेष्ठ (मोक्षदायक) है और
अदः=वह मार्ग
पथ्यम्=सरल है
इति=इस प्रकार मनुष्यों की
रुचीनाम्=अपनी अपनी रुचि की
वैचित्र्यात्=विचित्रता से
ऋजुकुटिल-नानापथ-जुषाम्=सीधे टेढ़े नाना मार्गों के अनुयायी
नृणाम्=मनुष्यों के लिये

पयसाम्=जलों को
अर्णवः=समुद्रप्राप्ति के
इव—समान
एकः—एक
त्वम्—आप ही
गम्यः—प्राप्त करने योग्य
असि—हो ॥७॥

[८]

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः,
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहिताम्,
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

अन्वय—हे वरद ! महोक्षः खट्वाङ्गम् परशुः अजिनम् भस्म फणिनः कपालम् च इति इयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः भवद्भ्रूप्रणिहिताम् ताम् ताम् ऋद्धिम् विदधति (तु) हि स्वात्मारामम् विषयमृगतृष्णा न भ्रमयति ।८।

हे वरद ! —हे मोक्षद !
महोक्षः—महावृष बूढ़ा बैल (वाहन)
खट्वाङ्गम्—खाट का पाया
परशुः—कुठार 'फरसा'
अजिनम्—व्याघ्रचर्म (कटिवस्त्र)
भस्म—भस्म 'चिता की राख' (उबटन)
फणिनः—सर्प (शरीर भूषण)
च—और
कपालम्—नर-कपाल 'मनुष्य की खोपड़ी
इति—यह उपरोक्त
इयत्—इतनी सामग्री
तव—आपके भोगोपयोगी
तन्त्रोपकरणम्—प्रधान सम्पदा है अर्थात् यह आप का धन है, तो भी
सुराः—सब देवता

भवद्भ्रू-प्रणिहिताम् = आपकी कृपादृष्टि से प्राप्त हुई
ताम्-ताम् = उस उस
ऋद्धिम् = स्वर्ग राज्य रूपी सम्पत्ति का
विदधति = उपभोग करते हैं, यह आश्चर्य की बात है, कि आप वैराग्य सामग्री वाले हैं, और भक्तों को सब कुछ प्रदान करते हैं
हि = निश्चय से इन्द्रादिओं को उपभोग देने वाले भी स्वयं उपभोग नहीं करते, यह ठीक ही है क्योंकि
स्वात्मारामम् = स्वस्वरूप में स्थित आप को
विषयमृगतृष्णा = रूपरसादिविषयों की मृगतृष्णा
न = नहीं
भ्रमयति = भ्रमा सकती।

---

[९]

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदम्
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता

अन्वय—हे पुरमथन ! कश्चित् सकलम् इदम् सर्वं जगत् ध्रुवम् गदति तु (पुनः) अपरः अध्रुवम् 'गदति' परः ध्रौव्याध्रौव्ये 'गदति' समस्ते अपि एतस्मिन् जगति व्यस्तविषये 'अहम्' तैः विस्मितः इव त्वाम् स्तुवन् न जिह्रेमि 'एवं सत्यपि' ननु मुखरता धृष्टा खलु तु धृष्टैव ।९।

हे पुरमथन ! —हे त्रिपुरारे !
कश्चित्—सांख्यमतानुयायी ब्रह्म-
सत उत्पत्तिः के
अनुसार
सर्वम्—चराचर रूप
इदम्—इस
सकलम्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को
ध्रुवम्—नित्य अविनाशी
वदति—कहते हैं
तु—और
अपरः—बौद्ध
अध्रुवम्—नश्वर कहते हैं तथा
परः—नैयायिक
ध्रौव्याध्रौव्ये—नश्वर और अवि
नाशी दोनों ही
रूप मानते हैं।
एतस्मिन्—इन
समस्ते—सब बौद्धादियों की
बुद्धि

अपि—तो
जगति—संसार के
व्यस्तविषये—उलटे विषयों में
फँसी है और मैं तो
तैः—उन बौद्धादियों के कथनों
के द्वारा
विस्मितः—आश्चर्ययुक्त
इव—सा होकर
त्वाम्—आपकी
स्तुवन्—स्तुति करता हुआ
जिह्रेमि—लज्जित
न—नहीं होता हूं
ननु—निश्चय यह मेरी
मुखरता—चंचलता
खलु—ही
धृष्टा—ढीठ बना रही है और
लज्जा को जगह नहीं।

[१०]

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः,
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्,
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।

अन्वय—हे गिरिश ! अनलम् अनिल [अनल] स्कन्ध-वपुषः तव यत् ऐश्वर्यम् तत् यत्नात् परिच्छेत्तुम् उपरि विरञ्चिः अधः हरिः यातौ ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम् ताभ्याम् स्वयम् तस्थे तव अनुवृत्तिः किम् न फलति [अपि तु फलत्येव]. ।१०।

हे गिरिश !=हे कैलासवासिन् !
अनिल स्कन्धवपुषः=वायु आदि त्रिशिश शाखाओं से युक्त अर्थात् विराट् देह को धारण करने वाले
तव=आप का देशकाल और वस्तुकृत परिच्छेदों से रहित
यत्=जो
अनलम्=अग्निमय अण्डाकार
ऐश्वर्यं=ऐश्वर्य है
तत्=उसको
यत्नात्=प्रयास से
परिच्छेत्तुम्=जानने के लिये
उपरि=ऊपर के भाग में
विरश्चिः=ब्रह्मा और
अधः=नीचे पाताल में
हरिः=विष्णु भगवान्
यातौ=गये परन्तु पार नहीं पांकर
ततः=उस हठ को छोड़
भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम्=भक्ति श्रद्धाके भार से नम्र होकर स्तुति करते हुए
ताभ्याम्=उन दोनों ने
स्वयम्=स्वयम्
तस्थे=विराम किया आप के चरणों में नम्रता पूर्वक खड़े हो स्तुति की, तब तुमने उनको अपने स्वरूप का ज्ञान कराया, हे शंकर !
तव=आपकी
अनुवृत्तिः=भक्तिपूर्वक की हुई सेवा
किम्=क्या
न=नहीं
फलति=फलती, अपितु सब कुछ फल देती है ।

[११]

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरिव्यतिकरम्,
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्

अन्वय—हे त्रिपुरहर ! दशास्यः यत् अयत्नात् अवैरिव्यतिकरम् त्रिभुवनम् आसाद्य [आपाद्य] रणकण्डूपरवशान् [illegible] अभृत तत् इदम् शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् अस्ति ।११।

हे त्रिपुरहर !=हे त्रिपुरनाशक !
यत्=जो कि
दशास्यः=दशवदन रावण ने
अयत्नात्=यत्न के बिना ही
अवैरिव्यतिकरम्=निष्कण्टक
त्रिभुवनम्=तीनों लोकों को
आसाद्य=बना करके
रणकण्डूपरवशान्=रण करने के लिए खुजलाती हुई
बाहून्=भुजाओं को
अभृत=धारण किया अर्थात् स्वच्छन्द विचरा
तत्=इसलिये
इदम्=यह सब
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः=स्वशिर रूप कमलों की माला बना कर आपके चरणों में समर्पण है जिसमें ऐसी
स्थिरायाः—स्थायी
त्वद्भक्तेः—आपकी भक्तिका ही
विस्फूर्जितम्—प्रभाव है जो कि उसने सारे संसार पर निष्कण्टक राज्य किया ।

[१२]

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्,
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥

अन्वय—त्वदधिवसितौ कैलासे अपि त्वत्सेवासमधिगत-सारम् भुजवनम् बलात् विक्रमयतः अमुष्य त्वयि अलसचलितां-गुष्ठशिरसि पाताले अपि प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् ध्रुवम् उपचितः खलः मुह्यति।१२।

हे भगवन् ! =हे भगवन् !
त्वदधिवसतौ=आपकी निवास-भूमि
कैलासे=कैलास पर
अपि=भी
त्वत्सेवा-समधि-यतसारम् भुजवनम्=तुम्हारी सेवा के द्वारा प्राप्त सार-वाली भुजाओं की शक्ति को
बलात्=अभिमान से
विक्रमयतः=अजमाते हुए
अमुष्य=उस रावण को
त्वयि=आपके द्वारा
अलसच-लितांगुष्ठ शिरसि=आलस्य पूर्वक च-लाये गये अँगूठा के अगले भागद्वारा दबाये पर्वत के भार से दुखी होना पड़ा और उसे
पाताले=पाताल में
अपि=भी
प्रतिष्ठा=स्थिरता (जगह)
अलभ्या=प्राप्त नहीं हुई
आसीत्=थी, क्योंकि
ध्रुवम्=यह निश्चित है कि
खलः=दुष्ट (ओछा)
उपचितः=उन्नति पाकर
मुह्यति=मोह में फँस जाता है और धन का दुरुपयोग करता है तथा उपकार को भूल जाता है।

शंकरसेवा से ही बल प्राप्त कर रावण कैलास को उखाड़ने लगा, उसके दुष्ट भाव को जान, भगवान ने अपने अंगूठा को दवाया और उसका मान चूर किया, उससे घबराकर शान्ति के लिये भागे रावण को मर्त्य और स्वर्ग में तो क्या पाताल में भी स्थान न मिला। बड़ाई पाकर इतराने का फल यही है ।१२।

[१३]

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः

अन्वय–वरद ! परिजनविधेयः त्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः अपि सतीम् सुत्राम्णः ऋद्धिम् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयि, शिरसः अवनतिः कस्य अपि उन्नत्यै न भवति [अपि तु भवत्येव] ।१३।

हे वरद ! =हे आशुतोष !
परिजन-विधेयः त्रिभुवनः =त्रिलोकी को आज्ञाकारी सेवक बनाने वाले वीर
बाणः=बाणासुर ने
परमोच्चैः=बहुत बढ़ी
सतीम्=हुई
अपि=भी
सुत्राम्णः=इन्द्र की
ऋद्धिम्=सम्पत्ति को
अधः=नीचे
चक्रे=कर दिया
तत्=वह सब कार्य
त्वच्चरणयोः=आपके चरणों के सेवाभाव से
वरिवसितरि=पूजने वाले बाणासुर के लिये
चित्रम्=अचम्भा
न=नहीं है क्योंकि
त्वयि=आपको

शिरसः—सिर से किया गया
अवनतिः—प्रणाम
[illegible]
न—नहीं
भवति—होता, अपितु होता ही हैं।

हे शम्भो ! जो तुम्हारे चरणों में [illegible] है उसकी इहलोक और परलोक की उन्नति अवश्यमेव होती है

[१४]

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवत[illegible]
स [illegible]ल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियम[illegible]
विकारोऽ[illegible] श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यस[illegible]

अन्वय—हे त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदे[illegible] कृपाविधेयस्य विषं संहृतवतः [illegible] अ[illegible] सः 'किम्' तव श्रियम् न कुरुते [इति न अपि तु कुरुत[illegible] अहो [इति आश्चर्यम्] भुवनभयभंगव्यसनिनः विकारः श्लाघ्यः भवति ।१४।

त्रिनयन !—हे त्रिनेत्र ! विष से
अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षयचकि-तदेवासुर कृपा-विधेयस्य = असमय में संसार के नाश से भयभीत देवता और दानवों पर कृपा कर के एवं प्राणीमात्र के कल्याण के लिए
विषम्=समुद्रोत्पन्नविष को
संहृतवतः—पीने वाले
तव—आपके
कण्ठे—गले में विष का
यः—जो
कल्माषः—नीला चिह्न हुआ
सः—वह चिह्न
किम्—क्या आपकी
श्रियम्—शोभा को

—नहीं
कुरुते—बढ़ाता, अपितु बढ़ाता
ही है और
अर्थो—ठीक भी है क्योंकि
भुवनभय-भङ्गव्यसनिनः— संसार के भय का नाश करने में लगे हुए महापुरुषों का
विकारः—विकार
अपि—भी
श्लाघ्यः—प्रशंसनीय हुआ करता है अर्थात् उपकारी के दूषण भी भूषण समझे जाते हैं।

[१५]

असिद्धार्थो नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे,
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्,
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः।

अन्वय—हे ईश ! यस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति नित्यम् असिद्धार्थाः क्वचिद् अपि न एव निवर्तन्ते सः स्मरः इतरसुरसाधारणम् त्वाम् पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् 'युक्तम् एतत् वशिषु परिभवः पथ्यः न भवति।१५।

हे ईश !=हे सर्वेश्वर !
यस्य=जिस कामदेव के
विशिखाः=तीक्ष्ण बाण
सदेवासुरनरे=देव दानव और मनुष्यों से पूर्ण
जगति=संसार भर में
नित्यम्=सदा
क्वचिद्—कहीं पर
अपि—भी
असिद्धार्थाः—निरर्थक होकर
निवर्तन्ते—लौटते
एव—ही

न=न थे अर्थात् सर्वदा विजयी रहा।
सः=उस
एव=ही
स्मरः=काम ने
त्वाम्=आपको
इतरसुर- =सामान्य देवता
साधारणम्=मन में
पश्यन्=समझ कर देवों के कहने से आपकी

समाधि में विघ्न किया और वह
स्मर्तव्यात्मा=मृत्यु को प्राप्त
अभूत्=हुआ अतः
अहो=यह सत्य है कि
वशिषु=जितेन्द्रियों का
परिभवः=तिरस्कार करना
पथ्यः=हितकर
न=नहीं—
भवति=होता है।

[१६]

महीपादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदम्,
पदंविष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा,
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥

अन्वय—हे नटवर ! यदा त्वम् जगद्रक्षायै नटसि तदा पादाघाताद् मही सहसा संशयपदम् व्रजति विष्णोः पदम् भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् 'भवति' अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः दौस्थ्यम् याति ननु 'इति निश्चयेन भवतः' विभुता वामा एव ।१६।

यदा } =हे देवदेव ! जिस समय
त्वम्='तुम' दैत्यों को मोहकर
जगद्रक्षायै=जगत की रक्षा के लिए
नटसि=नृत्य करते हो
तदा=उस समय तुम्हारे
पादाघातात्=पांव के आघात से

मही=पृथ्वी
सहसा=अचानक
संशयपदम्=कांपने (धसने)
व्रजति=लग जाती है,
विष्णोः=विष्णु के
पदम्=पद आकाश में
भ्राम्यद्-भुजपरिघरुग्णग्रह-गणम् = घूमती वज्ररूपी भुजाओंकी रगड़ से ग्रह समूह घूम जाता है।
अनिभृत-जटाताडित-तटा = खुली हुई जटाओं से ताड़ित होकर

द्यौः=स्वर्ग भी
मुहुः=बारम्बार
दौस्थ्यम्=कम्पायमान
याति=हो जाता है
ननु=निश्चय ही यह सिद्ध होता है कि आपकी
विभुता=लीला
वामा=टेढ़ी
एव=ही है, महान के लिये अल्प का बलिदान हुआ ही करता है।

[१७]

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः,
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः॥

अन्वय—हे भगवन्! वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः यः वाराम् प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघु दृष्टः तेन जगत् जलधिवलयम् द्वीपाकारम् कृतम् हे धृतमहिम! इति अनेन एव दिव्यम् तव वपुः उन्नेयम्॥१७॥

वियद्-व्यापी — हे महादेव! आकाश में विस्तृत और

तारागणगुणित-फेनोद्गम-रुचिः — तारों के समूह द्वारा दूने किये फेनों से अत्यधिक शोभायमान

यः—जो

वाराम्—जल का

प्रवाहः—प्रवाह

ते—वह आपके

शिरसि—शिर में

पृषतलघुदृष्टः—छोटी जल बूँद के समान देखने में आया और

तेन—उसने ही

जगत्—संसार

जलधिवलयम् — सागर रूपी कंकरणसे घेरकर

द्वीपाकारम्—जम्बू द्वीपादि सात भागों में विभक्त

कृतम्—कर दिया

धृतमहिम !—हे शिव !

इति—इस

अनेन—से ही

तव—आपका

दिव्यम्—सच्चिदानन्दघन

वपुः—शरीर

उन्नेयम्—अनुमान करने योग्य है कि आप अनन्त हैं।

[१८]

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो,
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः

अन्वयः—भूतेश ! त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः ते अयम् आडम्बरविधिः कः (कोऽसौ) रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिः अगेन्द्रः

धनुः चन्द्राकौं रथांगे रथचरणपाणिः शरः इति 'अहो युक्तम् एतत् खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः न परतन्त्राः भवन्ति ॥१८॥

त्रिपुरतृणम्—हे आशुतोष ! त्रिपुर को घास के समान
दिधक्षोः—जलाने वाले
ते—तुम
अयम्—यह निम्नलिखित
आडम्बर-विधिः = बखेड़ा करने की
कः—क्या जरूरत थी
क्षोणी—जो कि आपने भूमि का
रथः—रथ
शतधृतिः—ब्रह्मा को
यन्ता—सारथी
अगेन्द्रः—हिमालय को
धनुः—धनुष
रथाङ्गे—रथ के पहिये
चन्द्राकौं—चन्द्र सूर्य को
अथो—और
रथचरण-पाणिः = विष्णु भगवान को
शरः—जहरीला बाण बनाया
इति—इत्यादि से यह ज्ञात होता है कि
विधेयैः—स्वरचित पदार्थों से
क्रीडन्त्यः—खेलती हुई
प्रभुधियः—सर्वज्ञों की बुद्धियां
परतन्त्राः—पराधीन
खलु—निश्चय ही
न—नहीं हुआ करती ।

[१९]

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा-
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥

अन्वय—हे त्रिपुरहर ! हरिः ते पादयोः साहस्रम् कमलबलिम् आधाय 'भवन्तमर्चितुमुपस्थितः' तस्मिन् एकोने (सति) निजम् नेत्रकमलम् [यद्] यदा उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिं गतः [सन्] त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति अद्यापीति शेषः ॥१९॥

हे त्रिपुरहर !=हे त्रिपुरारे !
हरिः=भगवान् विष्णु
ते=आपके
पादयोः=चरणों में
साहस्रम्=एक हजार
कमलबलिम्=कमलों की भेंटको
आधाय=लेकर प्रतिदिन पूजा करते थे एक दिन
तस्मिन्=उन में से
एकोने=एक कम होने पर
निजम्=स्वकीय
नेत्रकमलम्=नेत्र कमल को
यदा=जब उन्होंने तुम्हारे
उदहरत्=चरणों में चढ़ाया, तब से
असौ=वह
भक्त्युद्रेकः=भक्ति का आवेश
चक्रवपुषा=सुदर्शन चक्र रूप
परिणतिम्=परिणाम को
गतः=प्राप्त हुआ, और
त्रयाणाम्=तीनों
जगताम्=लोकों की
रक्षायै=रक्षा के लिए आज भी
जागर्ति=विद्यमान है एक द्वारा अनुष्ठित भक्ति का फल अनेकों के लिए सुखप्रद होता है।

[२०]

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्,
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं-
श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥

अन्वयं—जनः श्रुतौ श्रद्धां बध्द्वा पुनः क्रतुषु फलदान-प्रतिभुवम् त्वाम् सम्प्रेक्ष्य कर्मसु दृढ़परिकरः (वर्तते) कुतः यतः क्रतौ सुप्ते फलयोगे (सति) त्वम् जाग्रत् असि अतः क्रतुमताम् प्रध्वस्तम् कर्म पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलति, अपि तु कदा अपि न फलति ॥२०॥

=हे ईश !
जनः=मनुष्य
श्रुतौ=वेदों में
श्रद्धाम्=विश्वास
बध्द्वा=करके पुनः
क्रतुषु=यज्ञों में
फलदान-प्रतिभुवम्—फल के विश्वास-स्थानभूत
त्वाम्—तुम को
संप्रेक्ष्य—देख समझकर ही
कर्मसु—कर्मों में
दृढ़परिकरः—दृढ़ विश्वासपूर्वक लग जाते हैं क्योंकि
क्रतौ—क्रियारूप यज्ञों की
सुप्ते—समाप्ति में भी
त्वम्—आप कर्ता को
फलयोगे—फल प्राप्ति के लिए
जाग्रत्—जागते रहते
असि—और फल देते हो
अतः—अतएव
क्रतुमताम्—याज्ञिकों का
प्रध्वस्तम्—अनेक त्रुटियों से पूर्ण
कर्म—कर्म
पुरुषाराधनम्—परमेश्वर के आराधन के
ऋते—बिना
क्व—किस प्रकार वहां
फलति—सफल हो सकता है ।

[२१]

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीश स्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रं शस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो-
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ।

अन्वय—हे शरणद ! दक्षः क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः क्रतुपतिः ऋषीणाम् आर्त्विज्यम् सदस्याः सुरगणाः (एवं सामग्रि कस्याऽपि दक्षस्य) क्रतुफलविधानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः [जातः] ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धाविधुरम् [यदा भवति तदा] मखाः अभिचाराय हि भवन्तीति शेषः ।२१।

हे शरणद !—हे शरणागत-पालक !
क्रियादक्षः—यज्ञ क्रिया में निपुण और
तनुभृताम्—देहधारियों का
अधीशः—सम्राट
दक्षः—दक्ष प्रजापति तो
क्रतुपतिः—यजमान
ऋषीणाम्—त्रिकालज्ञ भृगुवशिष्ठादि ऋषिगण
आर्त्विज्यम्—ऋत्विज् तथा
सुरगणाः—ब्रह्माविष्णु आदि देव गणयज्ञसाक्षी
सदस्याः—सभासद थे तो भी
क्रतुफल-विधान-व्यसनिनः—यज्ञ कर्म फल प्रदान के पूरे अभ्यासी कर्माध्यक्ष
त्वत्तः—आप के द्वारा ही
क्रतुभ्रंशः—दक्षयज्ञ विनाश हुआ
ध्रुवम्—यह सत्य है क्योंकि
कर्तुः—यज्ञ कर्ता की आप में
श्रद्धाविधुरम्—श्रद्धा के बिना किये
मखाः—यज्ञ नष्ट या
अभिचाराय—विपरीत फल-दायक
हि—ही हुआ करते हैं ।

यज्ञफल प्रदाता भगवान् में श्रद्धा न हो और यज्ञ किया जाय तो वह तामस यज्ञ नष्ट होकर यजमान का विनाश ही करता है।

[२२]

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।

धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्,
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।

अन्वय—हे नाथ ! धनुष्पाणेः ते मृगव्याधरभसः रोहिद्-भूताम् स्वाम् दुहितरम् ऋष्यस्यवपुषा प्रसभम् रिरमयिषुम् [illegible] गतम् अभिकम [तथा] [illegible]तम् दिवम् अपि यातम् (एवम्) [illegible] अमुम्-प्रजानाथम् (प्रजापतिम्) अद्य अपि न त्यजति 'आचारहीनं न पुनन्ति [illegible]

हे नाथ !=हे स्वामिन् !
धनुष्पाणेः=धनुर्धारी
ते...तुम्हारे
मृगव्याधरभसः = मृग व्याध के रूप का पराक्रम कामातुर ब्रह्मा को देख कर लज्जा से
रोहिद्भूताम् = मृगी बनी हुई और भय से दौड़ती
स्वाम्=अपनी ही
दुहितरम्=कन्या के साथ
ऋष्यस्य=मृग का
वपुषा=शरीर धर के
प्रसभम्=बलपूर्वक
रिरमयिषुम्=रति के अभिलाषी
गतम्=और उसके पीछे दौड़ते हुए

सपत्राकृतम्=आपके द्वारा छोड़े आर्द्रारूप बाण से व्याकुल
अभिकम्=घृणित कार्य में तत्पर तथा
दिवम्=स्वर्ग में
अपि=भी
यातम्=जाकर
त्रसन्तम्=भयभीत
अमुम्=उस मृगशिरा नक्षत्र रूप
प्रजानाथम्=ब्रह्मा को
अद्य=आज
अपि=भी
न=नहीं
त्यजति=छोड़ता है ।

कुपथगामी ब्रह्मा का शासन आपने हो किया और लोक-मर्यादा बांधी आप की, लीला अपार तथा अचिन्त्य है। वह चित्र आज भी कुपथ पर नहीं चलने की शिक्षा देता है ॥२॥

[२३]

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्,
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथनपुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः॥

अन्वय—हे पुरमथन ! यमनिरत ! स्वलावण्याशंसा धृतधनुषम् पुष्पायुधम् अन्हाय तृणवत् पुरः प्लुष्टम् दृष्ट्वा अपि देवी देहार्द्धघटनात् त्वाम् अद्धा स्त्रैणम् अवैति बत अहो वरद ! युवतयः मुग्धाः भवन्ति ॥२३॥

पुरमथन !—हे पुरदाहक !
यमनिरत !—अष्टाङ्गयोगाचार्य
स्वलावण्याशंसा = अपनी या गौरी की सुन्दरता की आशा से आपको जीतनेके लियेआये
धृतधनुषम्—धनुषधारी लोकविजयी
पुष्पायुधम्—कामदेव को
पुरः—अपने सामने
अह्नाय—अतिशीघ्र
तृणवत्—घास के तुल्य
प्लुष्टम्—भस्मीभूत
दृष्ट्वा—देखकर
अपि—भी
देवी—पार्वती
देहार्द्धघटनात् = देहके वाम भाग में बैठनेके कारण
त्वाम्—आपको
अद्धा—प्रत्यक्ष रूप से
स्त्रैणम्—स्त्रीपरायण (लंपट)
अवैति—समझती है
वरद—हे वरदायक !
यह आश्चर्य की बात हो कौनसी है, क्योंकि

बत=प्राय:	...धा:=भोली भाली और
युवतय:=स्त्रियाँ	मूर्ख हुआ करती हैं ।

[२४]

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं,
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥

अन्वय—स्मरहर ! श्मशानेषु आक्रीडा तथा पिशाचाः सहचराः चिताभस्म आलेपः नृकरोटी स्रग् अपि इति एषः ते परिकरः हे वरद ! एवम् अखिलम् अमङ्गल्यम् तव शीलम् भवतु नाम तथा अपि स्मर्तॄणाम् परमम् मंगलम् असि ।२४।

स्मरहर !=हे मदनान्तक !	नृकरोटी=मनुष्य के कपालों की
श्मशानेषु=मृतक जलाने के स्थान पर	स्रग्=कण्ठ माला इत्यादि तो आपकी
तव=आपकी	परिकर:=सामग्री है यानी अशुभ वस्तु संग्रह है
आक्रीडा=केली (खेल) मांसभोजी	वरद !=हे वरप्रद !
पिशाचा:=भूत प्रेत साथ के	अखिलम्=आपका सम्पूर्ण
सहचरा:=खेलने वाले सेवक	शीलम्=यह चरित
चिताभस्म=जले हुए मुर्दों की राख	अमंगलम्=अमंगल
आलेप:=शरीर लेपन	भवतु नाम=हो भले
	एव=ही

तथा=तो
अपि=भी आपके भूतेश ईशान श्मशान वासी आदि नाम
स्मर्तृणाम्=स्मरण करने वालों के लिए तुम
परमम्=अत्यधिक
मङ्गलम्=कल्याणकारी
असि=हो ही

हे प्रभो! तुम अपने भक्तगण का सर्व प्रकार मङ्गल करते हो, यही तो आपकी अद्भुत महिमा है ॥२४॥

[२५]

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्तमरुतः,
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
[illegible]लोक्याह्लाद ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्त्वंकिमपियमिनस्तत् किलभवान्

अन्वय–(हे शूलपाणे) आत्तमरुतः प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः यमिनः प्रत्यक् मनः चित्ते सविधम् [यथा स्यात् तथा] अभिधाय अन्तः यत् [अनिर्वचनीयतत्त्वम्] आलोक्य आल्हादम् दधति [यथा] अमृतमये ह्लदे इव निमज्ज्य तत् तत्त्वम् भवान् किल [अथवा तत् किल, भवान् त्वम्] असि ॥२५॥

अमृतमये=हे शम्भो! अमृत जल से भरे हुये
ह्लदे=सरोवर (तालाब) में
इव=जिस प्रकार
निमज्ज्य=स्नान करके सूर्य के ताप से तपे हुये मनुष्य सुखी होते हैं उसी
आत्तमरुतः=प्रकार प्राणायाम

द्वारा प्राणवायु को निरोध कर, और
प्रहृष्यद्रोमाणः=रोमांचित हुये एवं
प्रमदसलिलोत्संगितदृशः=भक्ति के प्रेमाश्रुओं से पूर्ण नेत्रों वाले
यमिनः=योगी लोग
प्रत्यक्=बाह्य (चंचल)
मनः=मन को
चित्ते=हृदयाकाश में गुरु द्वारा प्राप्त
सविधम्=शास्त्रोक्त विधि से
अभिधाय—रोक करके
अन्तः—आत्मा में ही
यत्—जिस
किम्—किसी
अपि—भी अनिर्वचनीय परमतत्त्व को अभेद से
आलोक्य—देख करके
आह्लादम्—परमानन्द को
दधति—प्राप्त होते हैं वह
तत्—शुद्ध ब्रह्मतत्त्व
किल—निश्चय
भवान्—आप ही हैं और हैं केवल ज्ञानगम्य ।

मनवाणी के अविषय शुद्ध बुद्धाखण्ड सनातन ब्रह्म तुम ही हो ।२५।

[२६]

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

अन्वय–शम्भो ! त्वम् अर्कः त्वम् सोमः त्वम् पवनः त्वम् हुतवहः त्वम् आपः त्वम् व्योम उ (वितर्के) त्वम् धरणिः त्वम् च आत्मा असि इति परिणताः त्वयि एवम् परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु नाम वयम् तु (हि) यत् त्वम् न भवसि तत् तत्त्वम् न हि विद्मः ॥२६॥

त्वम् =हे गिरीश ! तुम
अर्कः=सूर्य हो
त्वम् =तुम
पवनः=वायु हो
त्वम् =तुम
हुतवहः=अग्नि हो
त्वम् =तुम
व्योम—आकाश हो
त्वम्—तुम
धरणिः=पृथ्वी
उ=और
आत्मा=आत्मा भी तुम ही
असि=हो यानी ये आठ मूर्तियां तुम्हारी हैं
इति=इस प्रकार इन मूर्तियों के मानने में
परिणताः=दृढ़बुद्धि पण्डितजन
त्वयि=आपके विषय में
एवम् =ऐसी
परिच्छिन्नाम् =परिच्छिन्न
गिरम्—एक देशी वाणी को
बिभ्रतुनाम—कहते रहें, किन्तु
वयम्—हम
तु—तो
इह—इस संसार में
यत्—जो वस्तु
त्वम्—आप
न—नहीं
भवसि – हों
तत्—उस
तत्त्वम्—पदार्थ को ही
न—नहीं
विद्मः—जानते अर्थात् सब कुछ तुम ही हो ।

[२७]

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणदगृणात्योमिति पदम्

अन्वय–शरणद व्यस्तंओम् इति पदम् त्रयीम् तिस्र वृत्तीः त्रिभुवनम् अथो त्रीन् सुरान् अपि त्रिभिःअकाराद्यैः वर्णैः अभिदधत् [पुनः] तीर्णविकृति तुरीयम् ते धाम अणुभिःध्वनिभिः अवरुन्धानम् [पुनः]समस्तम् (एतादृशम्) त्वाम् गृणाति २७

शरण्द ! —हे शरण्य !
व्यस्तम्—व्यस्त (न मिला हुआ
ओम्—ॐ
इति—यह
पदम् =पद व नाम
अकाराद्यैः अकार उकार मकार
त्रिभिः—इन तीन
वर्णैः—अक्षरों द्वारा
त्रयीम्—ऋगादि तीनों वेदों
तिस्रः—तीन
वृत्तीः—उदात्तादि स्वरों अथवा जाग्रत आदि अवस्थाओं को तथा
त्रिभुवनम्—त्रिलोकी या तीन शरीर
अथो—और उन्होंके अभिमानी
त्रीन्—तीनों
सुरान्—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हिरण्यगर्भ, विराट, ईश्वर, विश्व, तैजस प्राज्ञ, देवों को

अपि=भी
अभिदधत्—कहता है अर्थात् इस कारणकार्य प्रपञ्च से युक्त आप का बोधक है
समस्तम्—और मिला हुआ ॐ पद समुदाय
ते—शक्ति द्वारा तुम्हारे
तीर्णविकृति—निर्विकार
तुरीयम्—विशुद्ध शान्त
धाम—स्वरूप को
अणुभिः—अतिसूक्ष्म
ध्वनिभिः—नाद ध्वनियों से
अवरुन्धानम्—अवगत कराता हुआ
त्वाम्—तुम्हारा ही
गृणाति—प्रतिपादन करता है अर्थात् ओम के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ तुम ही हो ।

तस्य वाचकः प्रणवः, के अनुसार पदशक्ति से ॐ के वाच्यार्थ और समुदाय शक्ति से ॐ के लक्ष्यार्थ तुम हो हो ॥२७॥

[२८]

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि,
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते

अन्वय–देव भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः अथ उग्रः सह महान् तथा भीमेशानौ-इति यत् अभिधानाष्टकम् (अस्ति) अमुष्मिन् श्रुतिः अपि प्रत्येकं अस्मै धाम्ने-प्रियाय प्रविचरति (एवं रूपाय) भवते प्रणिहितनमस्योऽस्मि ।२८।

देव=हे महादेव !
भवः—भव
शर्वः—शर्व
पशुपतिः—पशुपति
अथ—और
उग्रः—उग्र
सह-महान्=महेश (महादेव)
तथा=तथा
भीमेशानौ—भीम-ईशान
इति=ऐसा पवित्र
यत्=जो तुम्हारा
इदम्=यह
अभिधा-नाष्टकम्=नामाष्टक है, तुम्हारी
अमुष्मिन्=इस नामाष्टक के

प्रत्येकम्=प्रत्येक नाम द्वारा
श्रुतिः=वेद शास्त्र और
अपि=ब्रह्मादि देवगण भी
प्रविचरति=स्तुति करते हैं यानी वेद स्मृति पुराण आदि का यह नामाष्टक सार है अतः
अतः=स्तुत्य और मोक्षरूप
प्रियाय=परमप्रिय
धाम्ने=ज्योति-स्वरूप शंकर भगवान् को मैं
प्रणिहित-नमस्यः=साष्टाङ्ग प्रणाम करता
अस्मि=हूं ।

[२९]

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो-
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।

नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो-
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ॥

अन्वय–प्रियदव ! नेदिष्ठाय नमः दविष्ठाय च नमः स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय नमः च महिष्ठाय नमः त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय नमः यविष्ठाय च नमः [सुरेश] सर्वस्मै ते नमः अतिसर्वाय च तत् इदम् नमः [इति पाठे तु शर्वाय नमः इति विशेषः] ॥२९॥

प्रियदव=हे सन्यासिन् !
नेदिष्ठाय=अतिसमीपवर्ती
नमः=तुमको नमस्कार
च=और अत्यन्त
दविष्ठाय=दूर में रहने वाले
नमः=तुमको प्रणाम
स्मरहर=हे मदनान्तक !
क्षोदिष्ठाय=अति लघुरूप तुमको
नमः=नमस्कार
च=तथा
महिष्ठाय—महानसे महान तुमको
नमः—नमस्कार
हे त्रिनयन !—हे त्र्यम्बक
वर्षिष्ठाय—आप वृद्ध रूपमें तथा
यविष्ठाय—अत्यन्त युवक रूप में भी रहते हो
नमो नमः=अतः तुम्हारे उस रूप को प्रणाम एवं
सर्वस्मै=अखिलब्रह्माण्डरूप
ते=तुम्हारे लिये
नमः=नमस्कार हो
च=और
अतिसर्वाय=प्रपञ्च से रहित अनिर्वचनीय तुमको
इदम्=यह
नमः=नमस्कार क्योंकि
तत्=वह सच्चिदानन्द ब्रह्म ही
इदम्=यह प्रपंच है अथवा
इदम्=यह दृश्य
तत्=ब्रह्म ही है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म के अनुसार सब कुछ आप जगद् रूप हो और सर्व प्रपञ्च से अतीत भी हो अतः मैं सर्वभावेन आपको प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

[३०]

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः,
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः,
प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥

अन्वय-ईश ! विश्वोत्पत्तौ बहुलरजसे भवाय नमो नमः तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमो नमः सत्त्वोद्रिक्तौ जनसुखकृते मृडाय नमो नमः प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

=और हे महेश !
विश्वोत्पत्तौ=संसार सर्गके लिये
बहुलरजसे=तुम्हारे रजोगुणी
भवाय=ब्रह्मा स्वरूप को
नमोनमः=बार२ नमस्कार और
सत्त्वोद्रिक्तौ=सत्त्वगुण की वृद्धि में
जनसुखकृते=जीव हितकारी विश्व पालक
मृडाय=(मृडरूप) विष्णुतुमको
नमोनमः=नमस्कार २ तथा
तत्संहारे=प्रलय के लिये
प्रबलतमसे=तुम्हारे तमोगुणी
हराय=रुद्र रूप को भी
नमोनमः=नमस्कार हो और
प्रमहसि=परमश्रेष्ठ
निस्त्रैगुण्ये=गुणातीत मायारहित
पदे=मोक्षधाम
शिवाय=शिव को
नमोनमः=बारम्बार प्रणाम है

सर्जन-पालन और संहरण इन क्रियाओं से ही रजोगुणी भव (ब्रह्मा) तमोगुणी-हर (रुद्र) और सत्त्वगुणविशिष्ट मृड (विष्णु) ये नाम और रूप आपके हुए हैं, वस्तुतः हे शिव ! आप तो अखण्ड ब्रह्म अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगतभेद शून्य हैं और प्रपञ्चो-पशमम् शांतम् के अनुसार अद्वितीयात्मतत्त्व और केवल मोक्ष-

स्वरूप हैं हे ओंकार-वेद्य ! आपको शिवोऽहम् इस प्रकार अभेद से जानकर ही 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' जीव ब्रह्म है ॥३०॥

[३१]

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्,
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इतिचकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

अन्वय–हे वरद ! क्लेशवश्यम् कृशपरिणति इदम् [मदीयम्] चेतः क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वद् ऋद्धिः क्व च इति चकितम् माम् भक्तिः अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपुष्पोपहारम् आधात् ॥३१॥

वरद !=हे वरदायक !
क्लेशवश्यम्=अविद्यादिपांच-दुःखों के वश और
कृशपरिणति=बलहीन क्षुद्रविषय
इदम्=यह मेरा
चेतः=अन्तःकरण तो
क्व=किस योग्य है
च=और
क्व=कहां
तव=आपको
गुणसीमोल्लं=अपरिमित-अनन्त
घिनी=और गुणों की सीमा से बाहर
शश्वत्=नित्य
ऋद्धिः=विभूति
च=तथा इस
इति=अपनी असमर्थता के कारण
चकितम्=भयाकुल सा था तो भी
माम्=मुझे
भक्तिः—आपकी भक्ति ने ही
अमन्दीकृत्य—योग्य बनाया है और
ते—तुम्हारे
चरणयोः—पादपद्मों में मुझ से यह
वाक्यपुष्पो- —कवितामय
पहारम्—पुष्पों की भेंट
आधात्—कराई है ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।३२।

अन्वय--ईश ! (तव गुणलेखनार्थम्) सिन्धुपात्रे असित-गिरिसमम् कज्जलं स्यात् सुरतरुवरशाखा लेखनी उर्वी पत्रम् (स्यात्) यदि शारदा गृहीत्वा सर्वकालम् लिखति तदपि तव गुणानाम् पारम् न याति ।।३२।।

ईश !—हे विश्वम्भर ! आपके गुण लिखने के लिए
सिन्धुपात्रे–समुद्ररूपी पात्र में
असितगिरि–काले पर्वतों के
समम्–समान
कज्जलम्–स्याही और
सुरतरुवर-शाखा }—कल्पवृक्ष शाखा की
लेखनी–कलम तथा
उर्वी–भूमि की
पत्रम्–पट्टी इत्यादि बृहद सामग्री को
यदि–यदि स्वयं
शारदा–सरस्वती भी
गृहीत्वा–लेकर
सर्वकालम्–सतत
लिखति–लिखती रहे
तदपि–तो भी
तव–आपके
गुणानाम्–गुणों के
पारम्–पार को
न–नहीं
याति–पा सकती, फिर मैं तो किस गिनती में हूं।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो-
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अन्वय---सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः असुरसुर मुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य अलघुवृत्तैः रुचिरम् एतत् स्तोत्रम् चकार ।३३।

असुरसुर-मुनीन्द्रैः = असुर-देव और मुनीश्वरों से
अर्चितस्य—पूजित
इन्दुमौलेः—चन्द्रधारी तथा
ग्रथितगुण-महिम्नः = प्रशंसित गुणों से युक्त और
निर्गुणस्य—फिर भी गुणातीत
ईश्वरस्य—शिवजी भगवान का
अलघुवृत्तैः—शिखरिणी छन्दों द्वारा
रुचिरम्—अत्यन्त मनोहर
एतत्—इस
स्तोत्रम्—महिम्नः स्तोत्र को
सकलगुण-वरिष्ठः = सर्वप्रकारकेशुभ-गुणोंसे अलंकृत
पुष्पदन्ताभि-धानः = पुष्पदन्ताचार्य ने
चकार—बनाया है ।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्,
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र,
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ।३४।

अन्वय—यः पुमान् शुद्धचित्तः [सन्] परमभक्त्या धूर्जटेः एतत् अनवद्यम् स्तोत्रम् पठति सः अत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमान् च भवति तथा [देहत्यागानन्तरम्] शिवलोके रुद्रतुल्यः च भवति [तस्मात्सर्वैर्मुमुक्षुभिः सेव्यो भगवान् शिवः] ॥३४॥

यः—जो
पुमान्—मनुष्य
शुद्धचित्तः—पवित्रान्तःकरण से
परमभक्त्या—अनन्य भक्ति पूर्वक
धूर्जटेः—भगवान शिव के
एतत्—इस
अनवद्यम्—पवित्र
स्तोत्रम्=स्तोत्र को
पठति—पढ़ता है या पढ़ेगा
सः—वह
अत्र—इस लोक में
प्रचुरतर—बहुत धनधान्य-
धनायुः—आयु वाला होकर
पुत्रवान्—पुत्रवान् और
कीर्तिमान्—यशस्वी
भवति—होता है तथा
तथा—देह त्याग के बाद
शिवलोके—शिव लोक में
रुद्रतुल्यः—शिव समान् हो जाता है

अर्थात् शिवभक्त का जन्म मरण का चक्र सर्वथा समाप्त हो जाता है ॥३४॥

[३५]

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होमयागादिकाः क्रियाः
महिम्नःस्तवपाठस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम्

अन्वय—दीक्षा दानम् तपः तीर्थम् होमयागादिकाः क्रियाः महिम्नःस्तवपाठस्य षोडशीम् कलाम् न अर्हन्ति ॥३५॥

यज्ञकर्म का अधिकार दान तपस्या तीर्थसेवन होम यज्ञ आदिक सकल क्रियायें हे शम्भो ! तुम्हारे इस महिम्नः स्तोत्र-पाठ की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकतीं ।

आसमाप्त मिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ।३६।

अन्वय–पुण्यम् गन्धर्वभाषितम् अनौपम्यम् मनोहारि ईश्वरवर्णनम् शिवम् इदम् स्तोत्रम् आसमाप्तम् ।।३६।।

शिव महिमा से भरा हुआ परम पवित्र पुष्पदन्तकृत अनुपम और सुन्दर यह ३२ श्लोकों का मोक्षप्रद स्तोत्र समाप्त हुआ ।।३६।।

[३७]

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वंगुरोःपरम्।

अन्वय–महेशात् अपरः देवः न महिम्नः अपरा स्तुतिः न अघोरात् अपरः मन्त्रो न गुरोः परम् तत्त्वम् न अस्ति ।।३७।।

शिवजीसे उत्तम अन्य कोई देव या ईश्वर नहीं अर्थात् संसार के कर्ता भर्ता-संहर्ता और शुद्ध ब्रह्म शिव ही हैं। और महिम्नः स्तोत्र से श्रेष्ठ दूसरी कोई स्तुति नहीं है अघोर मन्त्र से सद्यः फलप्रद कोई मन्त्र नहीं तथा गुरु से बड़ा कोई तत्त्व नहीं है ।।३७।।

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः,
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्,
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ।३८

अन्वय–शिशुशशिधरमौलेः देवदेवस्य दासः कुसुमदशन नामा सर्व गन्धर्वराजः (आसीत्) अस्य रोषात् निजमहिम्नः

भ्रष्टः एव सः (स्वत्त्वलाभार्थम्) दिव्यदिव्यम् इदम् महिम्नः स्तवनम् अकार्षीत् खलु ॥३८॥

शिशुशशिधरमौलेः = बालचन्द्रधारी भगवान्
देवदेवस्य = महादेव का
दासः — सेवक
कुसुमदशननामा = पुष्पदन्त नामक एक
सर्व गन्धर्वराजः — सब गन्धर्वों का राजा था
सः — वह
अस्य — शिव के
रोषात् — क्रोध से
एव — ही
निजमहिम्नः = अपने महत्त्व से च्युत
भ्रष्टः = हो गया था फिर उसने शिव सन्तुष्टि के लिये
दिव्यदिव्यम् — परम दिव्य
इदम् — इस
महिम्न. — महिम्नः —
स्तवनम् — स्तोत्र को
अकार्षीत् — रचा (बनाया) और
खलु — अपनी शक्ति प्राप्त की । ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं,
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः,
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

अन्वय—न अन्यचेताः (सन्) प्राञ्जलिः मनुष्यः सुरवरमुनिपूज्यम् स्वर्गमोक्षैकहेतुम् पुष्पदन्तप्रणीतम् अमोघम् इदम् स्तवनम् यदि पठति (तर्हि) किन्नरैः स्तूयमानः शिवसमीपम् व्रजति ॥३९॥

अन्यचेताः—अन्यचित्त
न—न होता हुआ
प्राञ्जलिः—हाथ जोड़ कर
मनुष्यः—जो नर (नारी)
सुरवरमुनिपूज्यम् = इन्द्रादि देवों और सन्यासियों के द्वारा पूजित एवं
स्वर्गमोक्षैकहेतुम् = स्वर्ग तथा मोक्ष के कारण
पुष्पदन्तप्रणीतम् = पुष्पदन्त कृत
अमोघम्—अमोघ
इदम्—इस
स्तवनम्—महिम्नः स्तोत्र को
यदि=यदि
पठति—पढ़े तो वह साधक
किन्नरैः=किन्नरों द्वारा
स्तूयमानः=पूजित होकर
शिवसमीपम्—मोक्ष को
व्रजति—प्राप्त होता है ॥३९॥

श्री पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन,
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन,
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

अन्वय-श्री पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन किल्विषहरेण हरप्रियेण कण्ठस्थितेन समाहितेन पठितेन स्तोत्रेण भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ॥४०॥

पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन —पुष्पदन्ताचार्य के मुख कमल से बने
किल्विषहरेण—पापहारी और
हरप्रियेण—महादेव जी के प्यारे तथा
समाहितेन—सर्वहितकारक
कण्ठस्थितेन-कण्ठ किये हुये इस
स्तोत्रेण—महिम्नः स्तोत्र के पाठ से
भूतपतिः—भगवान विश्वनाथ
महेशः—शंकर
सुप्रीणितः—बहुत प्रसन्न
भवति—होते हैं और देते हैं भक्तको आत्मज्ञान।

[४१]

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयताम् मे सदाशिवः॥

अन्वय—एषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः तेन (गन्धर्वराजेन्) अर्पिता (तस्मात् प्रसन्नो भूत्वा महत्व दत्तवान्) इति मे (पाठकस्याऽपि) देवेशः सदाशिवः प्रीयताम् ॥४१॥

इस महिम्न स्तोत्र द्वारा की हुई पूजा को श्री शिव जी के चरणों में पुष्पदन्त ने सादर समर्पण किया और शंकर प्रसन्न हुए थे, तथा उसे महत्व प्रदान किया था, इसलिए आज अर्पण करने वाले मेरे ऊपर भी देवदेव शंकर प्रसन्न होवें और मोक्ष दें ॥४१॥

[४२]

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यताम् देव प्रसीद परमेश्वर॥

अन्वय—यद् अक्षरम् पदम् भ्रष्टम् च मात्रा हीनम् यद् भवेत् हे देव ! तत् सर्वम् क्षम्यताम् (तथा) हे परमेश्वर प्रसीद ॥४२॥

जो प्रमादवश अक्षर पाद की भूल, और जो मात्राओं की कमी हो जाय, या हुई हो तो उस सर्व को हे परमेश्वर ! आप क्षमा करें तथा हे देव ! आप प्रसन्न हों ॥४२॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ।४३।

अन्वय—हे महेश्वर ! कीदृशः असि तव तत्त्वं न जानामि महादेव ! यादृशः असि तादृशाय नमो नमः ॥४३॥

हे भगवान् शिव ! आप कैसे हो, मैं तुम्हारे साररूप को नहीं जानता, हे महादेव ! आप जैसे भी हो, वैसे ही आप के स्वरूप को नमस्कार हो ॥४३॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥१॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

(श्रीविद्वद्वरिष्ठ पुष्पदन्ताचार्यविरचित श्रीमहिम्नःस्तोत्रम् समाप्तम्)

अर्थ—त्रिविध दुःख नाशक ओंकार स्वरूप वह परब्रह्म पूर्ण है और तीन प्रकार के दुखों के नाश के लिए मन्त्र में शान्ति शब्द का त्रिवार पाठ किया है, यह जगत भी पूर्ण है और उस ब्रह्म की पूर्णता से यह दृश्यपूर्णतायुक्त उत्पन्न होता है तथा पूर्ण ब्रह्म की पूर्णता लेकर भी पश्चात् ब्रह्मपूर्ण ही शेष रहता है ॥१॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ श्री साम्बसदाशिवार्पणमस्तु ॥

इति आचार्यमहामण्डलेश्वर श्री स्वामि प्रकाशानन्द व्याकरण-
वेदान्ताचार्यकृत श्री शिवमहिम्नः स्तोत्रान्वय प्रतिपदार्थ
प्रबोधिनी सरलार्थभाषा टीका समाप्ता ॥

॥ ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॥

* अथ शिवनामावलिः *

ॐ महादेव शिंव शंकर शम्भो, उमाकान्त हर त्रिपुरारे।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन्, गंगाधर मृड मदनारे॥
हर शिव शंकर गौरीशं, वन्दे गंगाधरमीशम्।
रुद्रं पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरनाथम्॥

ॐ=हे ॐ! महादेव=हे महादेव! (हे) शिव! (हे) शङ्कर! उमाकान्त=हे पार्वतीपते! (हे) हर! त्रिपुरारे=हे त्रिपुरासुर का वध करने वाले! मृत्युञ्जय=हे मृत्यु को जीतने वाले! वृषभध्वज=हे वृषभ-ध्वज! 'वृषभ' शब्द का अर्थ हैं-धर्म एवं बैल और ध्वज कहते हैं-ध्वजा एवं वाहन को। शिवजी की ध्वजा में धर्म के सूचक वृषभ का चिह्न है, अतः शिवजी वृषभध्वज हैं। सत्त्वगुण का पूर्ण विकास होने पर ही धर्म लाभ होता है, पशुओं में सबसे अधिक सत्त्वगुण का विकास गोजाति में हुआ है, इसीलिये धर्म का प्रतीक वृषभ (बैल) ही शिवजी का वाहन है। भाव यह है कि शिव धर्माचरण में ही आरूढ़ रहते हैं, अधर्म में पग धरते ही नहीं। भव भक्तात्माओं के धर्ममय हृदयारविन्दों में भवानी के सहित सदा वास करते हैं-यह भी 'वृषभध्वज' का तात्पर्य है। शूलिन्=हे त्रिशूलधारी!

त्रिताप या त्रिगुणमय जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से भी परे, आनन्दमय या त्रिगुणातीत तुरीय अवस्था में सदा स्थित रहते हैं—यही शिव का 'शूलिन्' (त्रिशूलधारी) होना है। (हे) गङ्गाधर ! मृड=हे स्तुत्य ! मदनारे=हे कामदेव के नाशक ! (हे) हर ! (हे) शिव ! (हे) शङ्कर ! गौरीशम्= पार्वतीपते, गङ्गाधरम्=गंगाधर, ईशम्=ईश्वर को, वन्दे= वंदन करता हूं। रुद्रम्=रुद्र, दीन दुःखियों की दुर्दशा पर रुदन (आंसू बहा, द्रवीभूत हो) कर, द्रुतगति से उनके अश्रुओं को आनन्दाश्रुओं में परिणत कर डालते हैं, अतः शिवजी 'रुद्र' कहलाते हैं। 'रु' रुलाते हैं (पश्चात्ताप कराके सरल बनाते हैं) 'द्र' कुत्सित गति (अत्याचारियों) को, इस वास्ते भी शिव 'रुद्र' हैं। पशुपतिम्=पशु (पापरूप या पाशवद्ध जीव) को पाप या पाशमुक्त करने वाले, (और) ईशानम्=सब पर शासन करने वाले, (और) काशीपुरनाथम्=काशीपुरी के नाथ, (शिवजी त्रिगुणरूप त्रिशूल पर विश्वरूप काशीपुरी को बसा कर विश्वनाथ हुए हैं और जब तक त्रिगुणात्मक प्रकृति में शिव की सत्ता रहेगी, तब तक विश्वरूप काशीपुरी का नाश नहीं हो सकता। आपका मैं हृदय से), कलये=रटन करता हूं।

जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशंकर जय शम्भो।
जय शम्भो जय शम्भो शिव गौरीशंकर जय शम्भो ॥

(हे) शम्भो ! जय=(आपकी) जय हो, शम्भो जय (हे) शिव (हे) गौरीशंकर ! शम्भो जय, पुनरपि 'जय शम्भो' आपकी बारबार जय हो।

शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा, हर हरेति हरेति हरेति वा।
भव भवेति भवेति भवेति वा, मृड मृडेति मृडेति मृडेति वा ॥
भज मनः शिवमेव निरन्तरम् ॥

शिव, शिव, इति=ऐसा शिव, शिव, इति=इसी प्रकार वा=अथवा, हर, हर, इति=इस रीति से, हर, हर, इति-इति=इस तरह से ही, वा=या, भव, भव, इति=ऐसा भव, भव, इति-इति=इस प्रकार से ही, वा मृड, मृड इति=इस प्रकार, वा, मृड मृड, इति-इति=इसी भांति से, मनः=हे मेरे मननशील मन! शिवम्=शिव का, एव=ही, निरन्तरम्=अहर्निश (एक क्षण का भी आलस्य किये बिना) भज=भजन करता रह!

॥ ॐ नमः पार्वतीपते हर हर महादेव ॥

॥ ॐ नमो नारायणाय ॥

ॐ नमः शिवाय

इस मन्त्रका ५००० जाप प्रतिदिन करने से सर्व-सिद्धि प्राप्त होती है।

❋ वेदसारशिवस्तवः ❋

(जगद्गुरु-श्रीमच्छङ्करभगवत्पादप्रणीतम्)

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं,
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं,
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥१॥

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं,
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं,
सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥२॥

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं,
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं,
भवानीकलत्रं भजे पंचवक्त्रम् ।३।

शिवाकान्त ! शंभो ! शशाङ्कार्धमौले !
महेशान ! शूलिन् ! जटाजूटधारिन् !
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप !
प्रसीद प्रसीद प्रभो ! पूर्णरूप ॥४॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं,
निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं,
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥५॥

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुः,
न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।

न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो,
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्ति तमीडे ॥६॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं,
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥७॥

नमस्ते नमस्ते विभो ! विश्वमूर्ते,
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते !
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य !
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ! ॥८॥

प्रभो ! शूलपाणे ! विभो ! विश्वनाथ !
महादेव ! शम्भो ! महेश ! त्रिनेत्र !
शिवाकान्त ! शान्त ! स्मरारे ! पुरारे !
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥९॥

शम्भो ! महेश करुणामय ! शूलपाणे !
गौरीपते ! पशुपते ! पशुपाशनाशिन् !
काशीपते ! करुणया जगदेतदेकः,
त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥१०॥

त्वत्तो जगद्भवति देव ! भव ! स्मरारे !
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड ! विश्वनाथ !
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश,
लिङ्गात्मकं हर ! चराचरविश्वरूपिन् ॥११॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिवताण्डवस्तोत्रम्

卐

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥१॥

भावार्थ—जो शिवजी जटारूपी वन से गिरती हुई ऐसी गंगा जी के जल प्रवाह से पवित्र कण्ठ में लटकती हुई बड़े-बड़े सर्पों की माला को धारण करके और डमडुमड् शब्द वाले डमरु को बजाते हुए ताण्डव नृत्य करते हैं वे भोलानाथ हमारा कल्याण करें ॥१॥

जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥२॥

भावार्थ—जटा ही मानो कटाह (कराह) है उसमें अधिक वेग से घूमती हुई जो निलिम्पनिर्झरी कहिये देवगंगा हैं उनकी चञ्चल तरंगरूपी लता जिसके मस्तक में विराजमान हो रही हैं

और जिनके ललाट में धक् ४ इत्यादि शब्द करती हुई अग्नि जाज्वल्यमान हो रही हैं ऐसे द्वितीया के चन्द्रमा को शिर पर धारण करने वाले शंकर में मेरी प्रीति क्षणक्षण में हो ॥२॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर—
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥३॥

भावार्थ—हिमाचलनन्दिनी श्री पार्वतीजी के साथ सुन्दर विलास करने वाले वे जिनके कटाक्षों से जिनका मन प्रसन्न हो रहा है और अपने कृपाकटाक्ष से निज भक्तों का जिन्होंने दुःख दूर किया है ऐसे किसी दिगम्बर सदाशिव में मेरा मन विनोद को प्राप्त हो ॥३॥

जटाभुजंगपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा—
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे ।
मदान्धसिन्धुरासुरत्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥४॥

भावार्थ—जटाओं में शोभायमान सर्पों के पीले और चमकते हुए फणों की मणिरूपी कुंकुम से दिशारूपी स्त्रियों के मुखों को लिप्त करने वाले और मद से अन्धे गजासुर के चर्म के ओढ़ने से शोभित ऐसे प्राणिमात्रों के रक्षक सदाशिव में मेरा मन विचित्र आनन्द को प्राप्त हो ॥४॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिंगया
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
सुधामयूखरेखया विराजमानशेखरं
महः कपालि संपदे सरिज्जटालमस्तु नः ॥५॥

भावार्थ—अपने मस्तकरूपी आंगन में जलती हुई अग्नि की चिनगारी से कामदेव को भस्म करने वाले तथा ब्रह्मादि देवों से नमस्कार किये गये और अमृतरूप किरणों वाले चन्द्रमा की रेखा से जिनका मस्तक शोभित हो रहा है वे कपाल को धारण किये और उनके जटाजूट में गंगाजी शोभायमान हैं ऐसे तेजरूप सदाशिव हमें धर्म आदि सम्पत्ति दें ॥५॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर—
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।
भुजंगराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥६॥

भावार्थः—इन्द्र आदि देवताओं के मुकुट में गुंफित पुष्प-मालाओं के पराग से चरण जिनके धरने की भूमि धूसर वर्ण की हो रही है और सर्पराज की माला से जिन्होंने जटाजूट बांधी है और जिनके मस्तक पर चन्द्रमा शोभायमान है ऐसे शंकर हमें बहुत काल तक धर्म आदि चतुर्वर्ग दें ॥६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल—
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपंचसायके ।

धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥७॥

भावार्थः—अपने कराल विशाल भाल में धक् धक् शब्द से दहकती हुई अग्नि में प्रचण्ड कामदेव को भस्म करने वाले और हिमालय की कन्या पार्वती के कुचों के अग्रभाग में रंग से चित्रकारी करने में एक चतुर चितेरे ऐसे तीन नेत्र वाले शंकर में मेरी प्रीति हो ॥७॥

नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबद्धकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसुन्दरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥८॥

भावार्थः—नवीन मेघों के मण्डल के कारण कठिनता से पार जाने के योग्य और चमकते हुए ऐसे अमावस्या के अन्धकार के समान कण्ठ वाले, देवगंगा को मस्तक पर धारण किये, मृग-चर्म ओढ़ने से शोभायमान, चन्द्रमा को धारण करने से परम सुन्दर ऐसे जगत् के भार को धारण करने वाले शंकर हमारी सम्पत्ति को बढ़ावें ॥८॥

प्रफुल्लनीलपंकजप्रपंचकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम्।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥९॥

भावार्थ:—खिले हुए नीलकमल के विस्तार की श्याम प्रभा के समान कण्ठ की सुन्दर कांति से शोभित ग्रीवा वाले, कामदेव को भस्म करने वाले, पुरदैत्य के नाशक, संसार के भय को काटने वाले, दक्ष के यज्ञ को विनाश करने वाले और गजासुर अन्धकासुर और यमराज के नाशक ऐसे शंकर को सदा भजता हूँ ॥९॥

अखर्वसर्वमंगलाकलाकदम्बमंजरी—
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकम्
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥१०॥

भावार्थः—सम्पूर्ण मंगलों की देने वाली ऐसी चौसठ कला और चतुर्दश विद्यारूपी कदम्ब वृक्ष की मञ्जरी के रसप्रवाह की मधुरता चाखने में भ्रमररूप अर्थात् सब विद्याओं के ज्ञाता (जैसे कहा है कि—"सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः। सर्व-शास्त्रमयी गीता सर्वविश्व (विद्या) मयः शिवः ॥" अर्थात् गंगा में सब तीर्थ हैं, भगवान् में सब देवता हैं, गीता में सब शास्त्र हैं और शिवजी में सब विश्व है) कामदेव, त्रिपुरासुर, संसार, मखासुर, गजासुर, अन्धकासुर और यमराज इन सबके नाश करने वाले ऐसे शंकर को मैं भजता हूँ ॥१०॥

जयत्यदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजंगमश्वस—
द्विनिर्गमक्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिं धिमिं धिमिं ध्वनन्मृदंगतुंगमंगल—
ध्वनिक्रमप्रवर्त्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥११॥

भावार्थः—जिनके भंयकर ललाट में अत्यन्त वेग से घूमते हुए सर्पों के श्वास निकलने के समान अग्नि प्रकाशमान हो रही है और धिमि धिमि इत्यादि शब्द करते हुए मृदङ्ग की बड़ी ऊँची मंगल की ध्वनि के अनुसार तांडव नृत्य का आरम्भ करने वाले सदाशिव सब देवताओं के शिरोमणि हैं ॥११॥

दृषद्विचित्रतल्पयोभुर्जङ्गमौक्तिकस्रजो—
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम् ॥१२॥

भावार्थः—पाषाण और विचित्र शय्या में, सर्प और मोतियों के हार में, अमूल्य रत्न और मिट्टी के ढेले में, मित्र और शत्रु में, तृण और कमल समान नेत्र वाली स्त्री में तथा प्रजा और पृथ्वी-मण्डल के राजा में समान दृष्टि करके अर्थात् इनमें भेद न समझ कर मैं शंकर को कब भजूँगा ॥१२॥

कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुंजकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमंजलिं वहन् ।
विलोललोललोचनाललामभाललग्नक
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१३।

भावार्थः—देवगंगा के तीर पर लताभवन के भीतर निवास करता हुआ शिर पर अञ्जली बांधता हुआ सदा दुष्ट प्रकृति को त्याग करता हुआ और अत्यन्त चञ्चल नेत्र वाली स्त्रियों में

जो रत्नरूप पार्वती जी हैं उनके ललाट में लिखे हुए शिव शिव इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी हो सकूंगा ॥१ ॥

निलिम्पनाथनागरीकदम्बमौलिमल्लिका-
निगुम्फनिर्भरक्षरन्मधूष्णिकामनोहरः ।
तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं
परश्रियः परंपदं तदंग जत्विषां चयः ॥१४॥

भावार्थः—इन्द्र की अप्सराओं के शिरों में जो गुथे हुए मल्लिका के पुष्पों के गुच्छे हैं उनसे अधिक गिरते हुए परागों की गरमी से निकले हुए पसीने के कारण सुन्दर और परम शोभा का स्थान, ऐसा शिवजी के शरीर की कांतियों का समूह हमारे हर्ष को बढ़ाने वाली चित्त की प्रसन्नता को रात्रि दिन बढ़ावें ॥१४॥

प्रचण्डवाडवानलप्रभाशुभप्रचारिणी
महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पना ।
विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकध्वनिः
शिवेति मन्त्रभूषणा जगज्जयाय जायताम् ॥१५॥

भावार्थः—बड़ी प्रचण्ड समुद्र की अग्नि के समान प्रकाशित जो अमंगल हैं उनके नाश करने वाली अणिमा आदि जो आठ सिद्धियां हैं उनके साथ मिलकर स्त्रियों ने जिसमें मंगल-सूचक भजन गाये हैं और शिव शिव इस मन्त्र की ही जिसमें

शोभा है ऐसी मुक्तस्वभाव तथा सुन्दर नेत्र वाली पार्वती जी के विवाह की ध्वनि संसार की जय करे ॥१५॥

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां मदगजेन्द्रतुरंगयुक्तां
लक्ष्मीं प्रसादसमये प्रददाति शम्भुः ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूजा के अन्त में यह रावण के बनाये हुए स्तोत्र का पाठ मन लगाकर करता है उसको महादेव जी मत्त हाथी घोड़े इनके सहित स्थिर लक्ष्मी देते हैं ॥१६॥

---

* अथ श्री सिद्ध सरस्वतीस्तोत्र-प्रारम्भः *

* श्री सरस्वत्यै नमः *

आरूह्य श्वेत हंसे भ्रमति च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रम्,
वामे हस्ते च दिव्यं वरकनकमयं पुस्तकं ज्ञान-गम्यम् ।
स्वां वीणां वादयन्ती निजकरकमलैः शास्त्रविज्ञान-शब्दैः,
क्रीडन्ती दिव्यरूपा करकमलधरा भारती सुप्रसन्ना ॥

श्वेत पद्मासना देवी श्वेत पद्मोपशोभिता ।
श्वेताम्बर-धरा देवी श्वेतगन्धानुलेपिता ॥
अर्चिता मुनिभिः सर्वैः ऋषिभिः स्तूयते सदा ।
एवं ध्यात्वा सदा देवीं वाञ्छितं लभते नरः ॥

अथ विनियोगः---अस्य श्री सिद्ध सरस्वतीस्तोत्र मन्त्रस्य सनत्कुमारो भगवानृषिरनुष्टुप छन्दः श्री सिद्धसरस्वती देवता ऐं बीजं वद वदेति शक्तिः स्वाहेति कीलकं श्रीं सिद्ध सरस्वती प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अथ करन्यासः—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ऐं ऐं ऐं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लीं क्लीं क्लीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ सौं सौं सौं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ध्रीं ध्रीं ध्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं श्रीं श्रीं करतल करपृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः ।

अथ षडङ्गन्यासः—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हृदयाय नमः । ॐ ऐं ऐं ऐं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लीं क्लीं क्लीं शिखायै वषट् । ॐ सौं सौं सौं कवचाय हुम् । ॐ ध्रीं ध्रीं ध्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ श्रीं श्रीं श्रीं अस्त्राय फट । इति षडंगन्यासः ।

अथ ध्यानम्–ॐ शुक्लां ब्रह्मविचार सारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्,
वीणा पुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना,
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।
पाशं खण्डेन्दुकुन्दस्फटिकमणिनिभा भासमानासमाना,
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्राऽऽवृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत-पद्मासना ।
या ब्रह्माच्युत शङ्कर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

अथ मन्त्रजापः—ओं ऐं क्लीं सौं ह्रीं श्रीं ध्रौं वदवद वाग्वादिन्यै स्वाहा, ओं ऐं क्लीं सौं सरस्वत्यै नमः। अष्टोत्तरशतं जपेत् समर्पयेच्च।

ॐ ऐं ऐं ऐं इष्टमन्त्रे कमल भव मुखाम्भोजभूत स्वरूपे,
रूपारूप प्रकाशे सकल गुणमये निर्गुणे निर्विकारे।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदित विभवे नास्ति विज्ञान तत्वे,
विश्वे विश्वान्तराले सकल गुणमये निष्कले नित्य शुद्धे॥

ॐ क्लीं क्लीं क्लीं जाप्यतुष्टे हिमरुचि[illegible] वल्लकीव्यग्रहस्ते,
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जड़तां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्।
विद्ये वेदान्तगीते श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे,
मार्गातीत-स्वरूपे ! भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे॥

ॐ सौं सौं सौं सुस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते,
संतुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भविद्ये।
मोहे मुग्धप्रबोधे मम कुरु कुमतिध्वान्तविध्वंसमीड्ये,
गीर्गौर्वाग् भारती त्वं कवि वर रसने सिद्धिदे सिद्धि-साध्ये॥

ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्यबीजे शशिरुचि कमले कल्पवृक्षस्थशोभे,
भव्ये भव्यानुकूले कुमति-वनदहने विश्व वन्द्याङ्घ्रिपद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजन मनो मोक्षं संपादयित्रि,
प्रोत्फुल्ल ज्ञानकूटे हरि निजदयिते देवि ! संसारसारे॥

ॐ श्रीं श्रीं श्रीं स्तौमि देवीं वस मम हृदये मा कदाचित्त्यजेथाः
मा मे बुद्धिविरुद्धा भवतु न च मनोदेवि में यातु पापम्।
मा मे दुःखं कदाचिद्विपदि च समये पुस्तके माकुलत्वम्,
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाचित्॥

ॐ ध्रौं ध्रौं ध्रौं धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्तनीये,
नित्ये नित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे।
पुण्ये पुण्यप्रवाहे हरिहरनमिते वर्णतत्वे सुवर्णे,
मात्रे मन्त्रार्थतत्वे मति मति मतिदे माधवि प्रीतिनादे॥

इत्येतैः श्लोक मुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रः,
वाण्या वाचस्पतेरप्यविदित विभवो वाक्पटुर्मृष्टकण्टः।
स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिव सततं पाति तं सा च देवी।
सौभाग्यं तस्य लोके प्रभवति कविता संप्रसादं प्रयाति ॥

❊ ❊ ❊ ❊

निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाश्रुत ग्रन्थबोधः,
कीर्तिस्त्रैलोक्य मध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षात्।
दीर्घायुर्लोक पूज्यः सकल गुणनिधिः संततं राजमान्यो,
वाग्देव्याः संप्रसादात् त्रिजगति विजयी जायते सत्सभासु।

❊ ❊ ❊

ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः
सरस्वती स्तोत्रपाठात् स स्यादिष्टार्थलाभवान्।
पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशति संख्यया,
अविच्छिन्नं पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ॥

ॐ

समर्पणम्

येन व्याप्तमिदं विश्वं जडं च चेतनायते ।
तं श्रीमच्चेतनानन्दं प्रणौमि जगतां गुरुम् ॥

विश्वार्च्य-वन्द्य-परममान्य-वेदान्तवेद्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-जगद्गुरु श्री १००८ स्वामी श्री चेतनानन्द जी महाराज शान्तमहान्तप्रवर-श्रीपावनचरणसेवायां सादरं समर्पये—

नम्रता से पुष्प यह देता हूं गुरुवर ! लीजिये ।
स्वशिष्य को शिवभक्ति दे भगवन् ! कृतार्थ कीजिये ॥

श्रीचरणशिष्यः—

आचार्य महामण्डलेश्वर—प्रकाशानन्द :

—:नीराजनक्रमबोधकवचन—

आदौ चतुःपादतलैकदेशे द्वौ नाभिदेशे सकृदास्यमण्डले ।
सर्वांगदेशेषु च सप्तवारं रामार्तिकं भक्तजनः प्रकुर्यात् ॥

श्री भगवान् के तत्तदंगों का ध्यान और आरती करने का नियम—

(अंग)	(संख्या)
चरणारविन्द	चार-बार
नाभिकमल	दो-बार
मुखारविन्द	एक-बार
सर्वाङ्ग	सात-बार

१४ बार देवों के अभिमुख आरती उतारे ॥

प्राप्तिस्थान :—

१. जगद्गुरु आश्रम कनखल, हरिद्वार ।
२. श्री जगद् गुरु आश्रम, जनता बाज़ार, जयपुर (राजस्थान) ।
३. श्री राधा कृष्ण मन्दिर गीता भवन धार्मिक ट्रस्ट, गीती नगर, उज्जैन, (मध्य प्रदेश)
४. शिव मन्दिर सन्यास मठ, बजीरा बाद, (दिल्ली) ।